बँगला के आधुनिक कवि

[आधुनिक बँगला कविता पर किसी भी भारतीय भाषा में पहिला समीक्षा ग्रन्थ, कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ की कविता के विशेष मर्म-उद्घाटन के साथ। इसमें बँगला कविता की बहिरंग तथा अंतरंग परीक्षा की गई है]

लेखक
मन्मथनाथ गुप्त

किताब महल
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण, १९४६

प्रकाशक किताब महल, ५६, ए, जीरोरोड, इलाहाबाद।
मुद्रक पं० रामभरोस मालवीय, अभ्युदय प्रेस, प्रयाग

भूमिका

बँगला का आधुनिक काव्य-साहित्य एक विराट क्षेत्र में फैला हुआ है, उसको एक पुस्तक में वर्णन करना असम्भव-सा है। बँगला में भी ऐसी कोई पुस्तक नहीं है जिसका दायरा इतना बड़ा हो। अकेले रवीन्द्रनाथ पर ही इस पुस्तक से कहीं अधिक लिखने की जरूरत है। फिर भी हिन्दी के विद्वानों के समक्ष में इस पुस्तक को रखने का साहस करता हूँ। आशा है बँगला कविता के समझने में यह सहायक होगी।

यह पुस्तक कवि चरित्र नहीं है, बल्कि काव्य की समीक्षा, उसकी धाराओं की उत्पत्ति, घातप्रतिघात तथा विकास को ही दिखलाना मेरा उद्देश्य है। कवियों और उनकी कविता के चुनाव में हमें बड़ी दिक्कत का सामना करना पड़ा है। एक धारा की कई कविताओं को नमूना रूप में पाठक के सामने रखने के बजाय हमने वैचित्र्य का ख्याल रखना अधिक उचित समझा। इस आयोजन में सम्भव है किसी कवि की सर्वोत्तम कविता की जगह उसकी सबसे मौलिक किन्तु सर्वोत्तम नहीं, ऐसी कविता को मैंने स्थान दिया हो, फिर भी मैं समझता हूँ इस प्रकार सारे बँगला काव्य-साहित्य के विषय में पाठक की धारणा अधिक सही होगी। यही इस पुस्तक का उद्देश्य हो। इसमें युद्धकालीन कविता पर विचार नहीं किया गया, उसके लिये एक पृथक पुस्तक की आवश्यकता है।

जवाहर स्क्वायर,
इलाहाबाद

मन्मथनाथ गुप्त

सूची पत्र

१

प्रारम्भिक युग

२

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ और उनका दान

३

प्राक्-अति आधुनिक या रवीन्द्र युग

४

अति आधुनिक युग

१

आधुनिक बंगला काव्य का प्रारम्भिक युग

ईश्वर गुप्त, माइकेल मधुसूदन दत्त, बिहारीलाल, हेमचन्द्र, नवीन चन्द्र, देवेन्द्रनाथ, शिवनाथ शास्त्री, अक्षयकुमार बड़ाल इत्यादि

विज्ञान और कविता की चिरवैरिता

उन्नीसवीं सदी के अन्त की ओर विद्वानों तथा अन्य कुछ धुरन्धर समालोचकों ने यूरोप में यह नारा दिया कि अब विज्ञान का युग जोरों से शुरू हो चुका है और विज्ञान है मुख्यतः बुद्धि प्रधान, इसलिये अब कविता जो कलाकार की भावुकताप्रधान सृष्टि है पनप नहीं सकती। कहा गया कि बुद्धि की कड़ी धूप में कविता-लता मुरझा जायगी। आम तौर से यह प्रतिपादित किया जाने लगा कि वर्त्तमान युग की आत्मा कविता के स्वल्पपरिसर तथा सीमित माध्यम के जरिये से अपने को प्रकाश नहीं कर सकती। यह सब कहे जाने पर भी कविता बराबर लिखी गई, और पढ़ी गई, केवल यही नहीं आधुनिक कवितायें पहिले के युग की कविता से निकृष्ट नहीं थीं। ईट्स, नोगुचि, इकबाल, तथा रवीन्द्रनाथ का नाम लेना ही इस बात का प्रमाण है कि लाखों प्रमुख लोगों की आशंका गलत थी। जिस विज्ञान मार्तण्ड को कविता लता का चिरवैरी करके चित्रित किया गया था, देखा गया कि कविता ने अपनी प्राण शीलता के कारण उसी सूर्य से अपने लिये जीवन के उपकरण खींच लिये, केवल यही नहीं उसने विज्ञान की भाषा तथा पारिभाषिक शब्दभंडार से अपने लिये नई कल्पनायें, रूपक, उपमा आदि संग्रह कर लिया। कविता में पहिले पद्म, पराग, कमल, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र पवन आदि शब्द आते थे याद रहे ये सभी वैज्ञानिक शब्द थे, किन्तु अब कविता में ये शब्द तो

आते ही रहे, साथ ही अब डिनामाइट, मोटर आदि बिलकुल अर्वाचीनत्वपूर्ण वैज्ञानिक शब्द आने लगे। आधुनिक कवियों ने इस प्रकार इन निराशावादी समालोचकों की आशङ्काओं को झूठी प्रतिपन्न कर दिया। विज्ञान कविता का शोषक न होकर पोषक प्रमाणित हुआ।

बँगला साहित्य में हम विज्ञान से कविता विनाश की आशङ्का को और भी झूठी पड़ जाते देखते हैं। हिन्दी तथा अन्य सभी भाषा के प्राचीन साहित्य की तरह बँगला के प्राचीन साहित्य में केवल कविता ही कविता है। आधुनिक बँगला साहित्य में कविता का यह सर्वेसर्वापन या अधिनायकत्व तो कायम नहीं रहा, किसी भी साहित्य में कायम नहीं है, किन्तु फिर भी बँगला में कविता की सृष्टि गुण तथा परिमाण दोनों दृष्टि से बराबर सफलतापूर्वक जारी है। सच बात तो यह है आज विश्वसाहित्य में बँगला साहित्य की धूम बँगला के एक कवि की ही बदौलत है, नहीं तो बँगला जनसंख्या की दृष्टि से दुनिया की सप्तम भाषा होने पर भी शायद विश्वसाहित्य का रसिक इस भाषा के नाम से भी परिचित न होता। आगे चलकर हम इस बंगाली कवि रवीन्द्रनाथ को अच्छी तरह विश्लेषण करने का मौका आयेगा।

आधुनिकता का प्रारम्भ

आधुनिक बँगला कविता के सम्बन्ध में पहिली समस्या जो आती है वह यह है कि बँगला काव्यधारा की इस कलकलनिनादिनी सरिता में आधुनिकता का पानी कहाँ आरंभ हुआ, और प्राचीनता का कहाँ अन्त हुआ। यह एक टेढ़ा प्रश्न है। हम सभी जानते हैं कि रवीन्द्रनाथ या माइकेल मधुसूदन दत्त आधुनिक कवि हैं, किन्तु समस्या तो इनके सम्बन्ध में नहीं है, समस्या है इनके पहिले के कवियों को लेकर। कहाँ से हम समझें कि अब आधुनिकता का प्रादुर्भाव हुआ, फिर कुछ कवि ऐसे भी तो होंगे जो युगसन्धि के समय के हैं। इनमें से कुछ प्राचीनता का त्याग कर देने पर भी

आधुनिकता को अपना नहीं पाये, उनके लिये जमीन तैयार नहीं थी, कुछ आधुनिकता के मोह में इतने उच्छृङ्खल हो गये कि अनुप्रेरणा की धारा को सिलसिलेवार तरीके से कायम न रख सके, इसलिये उनकी सृष्टि विश्वामित्र की सृष्टि की तरह एक अजीबोगरीब सृष्टि हो गई जो न आधुनिक ही हुई न कविता।

पाश्चात्य प्रभाव

इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय साहित्य में हम आधुनिक युग तभी से गिन सकते हैं जब से उस पर पाश्चात्य प्रभाव पड़ा। यह बात हिन्दी, बँगला, मराठी सभी साहित्य के सम्बन्ध में सत्य है। पाश्चात्य की तीव्र रोशनी जब अकस्मात हमारी जाति की मन्थर चेतना पर पड़ी तो उसके सारे अस्तित्व में एक बिजली-सी दौड़ गई, प्रतिक्रिया की क्रिया फौरन शुरू हुई। इस आकस्मिक रोशनी के प्रहार से कहीं-कहीं तो गुमराही आ गई। इस युग के बँगला कविगणों में श्रेष्ठ ईश्वर गुप्त और रंगलाल गुमराह नहीं हुए, किन्तु क्यों? "यह इसलिये कि इन दोनों में से एक भी अच्छी तरह जग नहीं पाये थे, एक तो जमुहाई लेते हुए चुटकी बजाते ही रह गये दूसरे ने इस रोशनी की एक झलक देखकर ही किवाड़े बन्द कर लिये, और अपने कमरे के स्तिमित मिट्टी के दिये को बढाने की चेष्टा करने में रह गये।"

ईश्वर गुप्त

ईश्वरचन्द्र गुप्त की एक कविता लीजिये

> आर कबे भाइ मानुष हबे।
> देखे तोर आकार प्रकार, आचार विचार
> मानुष कबे, मानुष हबे ?
> होते चाओ मानुष यदि भ्रान्ति नदी
> एइ बेला पार हओ रे तबे ?

नयने छोटो वडो देखने जारे
तुयने तारे प्रिय रवे
जाते हाडि मुचि मराई मुचि
समभावे भावने मने

भावार्थ—'अब तू कब आदमी होगा, तुझे जो सूरत में में देखता हूँ तो हर तरीके से आदमी ही मालूम होता है, लेकिन तू यथार्थ में आदमी कब होगा? अगर तुझे सचमुच आदमी ही होना है तो भ्रान्ति रूपी नदी को पार कर के आदमी क्या नहीं बन जाता? जिनको तू छोटा बडा करके देखता है उनको भी मीठी वाणी से तुष्ट कर, जाति से चाहे कोई डोम या चमार ही हो, उसे बराबर करके ही सोच।"

साम्य, मैत्री, स्वाधीनता

ईश्वर गुप्त की इस कविता में हम साम्य, मैत्री स्वाधीनता (*Liberty, equality fraternity*) का सन्देश चाहे तो पढ सकते हैं, किन्तु भाषा कितनी अक्षम है तथा बयान कितनी दबी हुई है। यह जो कहा गया है ईश्वर गुप्त ठीकठीक जमे नहीं यह ठीक ही मालूम पडता है। रंगलाल की कविता का भी यही हाल है।

प्राच्य और पाश्चात्य

प्राच्य और पाश्चात्य के सम्बन्ध में बहुत सी बाते तथा पुस्तकें तुलनात्मक रूप से लिखी गई हैं, किन्तु मेरा ख्याल है जो पहिले पहल पाश्चात्य का प्रभाव प्राच्य पर पडा, और प्राच्य उससे तिलमिलाकर तिलमिला उठा, उसकी वजह यह नहीं थी कि पाश्चात्य ने जो कुछ दिया वह बिलकुल कोई मौलिक रूप से नई चीज थी, बल्कि सच बात तो यह है कि दोनों के घनत्व या गति में (*Intensity and speed*) आकाश पाताल का प्रभेद था। यदि इस दृष्टि से प्राच्य सभ्यता का प्रतीक हम बग्घे-ताउम को मानें तो पाश्चात्य का प्रतीक हमें लिफ्ट को मानना पडेगा। साम्य, मैत्री, स्वाधीनता वाले

आदर्श को ही लिया जाय, क्या यह भारतवर्ष में नहीं है या नहीं था? वसुधैव कुटुम्बकम आदर्श कहीं और का थोड़े ही है, किन्तु जहाँ एक तरफ यह आदर्श था वहाँ दूसरे तरफ भारतवर्ष में जाति भेद की भीषण चीनी दीवार थी जो मनुष्य के साथ मनुष्य को बिलकुल विलग कर देती थी। परिया शब्द विश्व के शब्दकोष में भारतवर्ष का ही दान है। बड़े-बड़े आदर्श यहाँ थे, किन्तु वे परमहंसों के लिये थे, साधारण मनुष्य तो यहाँ सैकड़ों प्रकार के भेद में पड़ा रहता था, वह वसुधैव कुटुम्बकम वालों परमहंसों को सिर उठाकर देखता भर था। जैसे पहाड़ पर चढ़े हुए मनुष्य को समतल का मनुष्य देखता है। उसके दिनानुदैनिक जीवन से साथ उसका ना तो कोई सम्पर्श था न सम्पर्क। ईश्वर गुप्त या उनके समकालीन कवियों में हम पाश्चात्य की इसी तुलना तथा जीवन में सिद्धान्त को अनुवाद करने की बजाय जीवन में नये प्रयोग करने की व्यग्रता का कुछ पुट पाते हैं। इसी कारण हम उन्हें मोटे तौर पर प्रथम आधुनिक बँगला कवि मान सकते हैं। मोटे तौर पर इसलिए कहा गया कि जिस तरह यह कहना कठिन ही नहीं असंभव है कि रात्रि किस मुहूर्त में खतम होकर प्रभात शुरू हुआ उसी तरह यह कहना कठिन है कि पाश्चात्य प्रभाव कब से बँगला साहित्य में किसको वाहन बनाकर दृष्टिगोचर होने लगा।

पाश्चात्य प्रभाव पर रवीन्द्रनाथ

यह शायद समझा जाय कि मैं पाश्चात्य प्रभाव को बहुत बड़ा स्थान दे रहा हूँ, इसलिये बँगला कविता पर पाश्चात्य प्रभाव का कितना बड़ा भाग है यह रवीन्द्रनाथ के शब्दों में पाठकों के सम्मुख रक्खा जाता है। कवीन्द्र लिखते हैं "आधुनिक बँगला कविता की उत्पत्ति यूरोपीय साहित्य की अनुप्रेरणा से हुई इसमें सन्देह नहीं। इस पर यह आपत्ति की जाती है कि फिर यह सब चीजें राष्ट्रीय नहीं हैं। इसका अर्थ यदि यह है कि यह सब कवि-

तायें वगालिया के रुचिविरुद्ध है, तब तो ये काव्य बगाल की सरजमीन पर उत्पन्न ही नहीं होते, और यदि अकुर उठता भी तो दो चार दिन मे जड समेत सूख जाता। कहना न होगा कि ऐसा होने का कोई भी लक्षण नहीं मालूम पड रहा है। इस दृष्टि से देखा जाय तो आलू मौलिक रूप से राष्ट्रीय नहीं है, किन्तु अब वह राष्ट्रीय भोजन तालिका मे ही सब तरह की देशी उम्दा तरीके की चीजों को पार कर गया है। राष्ट्रीय कुलशील की दुहाई देकर हम उस युग की "पाचली"+ नामक कविता पद्धति की जितनी भी प्रशसा करना चाहे करें कोई भी स्वदेशवत्सल सब छोडकर "पाचाली" को राष्ट्रीय विद्यालय मे चलाने की सिफारिस नहीं करेगा। नदी अपने लिये आप ही रास्ता काट लेती है, उसे नहर की तरह रास्ता काटकर कृत्रिम रूप से मिलाने की आवश्यकता नहीं होती। आधुनिक कविता ने इसी प्रकार अपने ही वेग के द्वारा देश के लोगों के चित्त में स्थान कर लिया है, और यह दिन बदिन गहरा और चौडा होता जा रहा है।"

बंकिमचन्द्र

इसी बात को और स्पष्ट करते हुए रवीन्द्र ने लिखा "बंकिमचन्द्र ने दुर्गेशनन्दिनी, कपालकुडला तथा विषवृक्ष को लेकर बगला साहित्य को अर्पण किया। कहना न होगा इनका रग ढग तथा शैली अग्रेजी साहित्य के अनुरूप थी। पडितों ने इनकी भाषारीति की खिल्ली उडाई है, उधर समाजधुरधरों ने इनकी यह कहकर निन्दा की है कि सामाजिक सनातन रीति मे हटाकर यह कहानियाँ देश के मन को अशुद्ध कर देती हैं, किन्तु देखा गया कि कट्टर से कट्टर निष्ठावाली सासों ने पतोहुओं से अनुरोध करना शुरू किया कि वे बंकिम की पुस्तकों को उन्हे पढकर सुनावे, वटतल्ला मे छपे हुए पुराणों से रस्सी से बँधा हुआ उनका चश्मा दूर हट गया था। यह विदेशी चीजें हमें अच्छी नहीं लगनी चाहिये कहकर किसी ने इनके प्रति लोगों की अश्रद्धा उत्पन्न नहीं कर पाई।"

+पाचाली को हम बँगला आल्हा कह सकते हैं।

पाश्चात्य प्रभाव, किन्तु

रवीन्द्र के प्रति कोई असम्मान न करते हुए मेरा यह विचार है कि आधुनिक बँगला साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव को श्री मोहितलाल मजुमदार ने इससे कहीं अच्छी तरह समझाया है। मोहितलाल स्वयं एक प्रतिष्ठित बँगला कवि हैं। "उन्होंने लिखा है लेकिन इस बात को भूलने से नहीं चलेगा कि यह साहित्यरस चाहे कितना भी उत्कृष्ट हो, यदि उसकी भाषा ने हमारे हृदय को स्पर्श न किया हो, यदि उसके भाव तथा कल्पनाओं ने हमारी रसपिपासा का उद्रेक भर न कर हमारे साथ मार्मिक सम्बन्ध की सृष्टि न कर पाई हो तो वह हमारा साहित्य नहीं हुआ। विदेशी भाव तथा कल्पनाओं को हम विदेशी साहित्य में भी उपभोग करते हैं, किन्तु उनसे हमारा मार्मिक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता, तभी तो विदेशी सुसाहित्य का अनुवाद ही स्वदेशी साहित्य की मर्यादा प्राप्त नहीं कर पाता, हमें पृथक राष्ट्रीय साहित्य की जरूरत पड़ती है। इस प्रारंभिक युग में जिन लोगों ने विदेशी भावों, कल्पनाओं तथा शैली को अपने में जज्ब कर लिया, अर्थात् उनसे अनुप्रेरणा लेकर अपने लिये एक स्वतन्त्र कल्पना कर उसमें अपनी स्वतन्त्र प्रतिभा की जान फूँक पाई, वे ही इस युग के साहित्यकार हैं। सृजन करने की इसी शक्ति को हम दिव्यशक्ति कहते हैं।"

साहित्य और जाति की प्रतिभा

'यहीं पर साहित्य के साथ राष्ट्रीयता का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। कवि की आत्मा केवल एक निर्विशेष मानवात्मा नहीं है। रूप की जो पिपासा कवि प्रकृति की स्थायी सम्पत्ति है, जिसके वशवर्ती होकर कवि के भाव कलामय हो जाते हैं, और निर्विशेष विशेष में परिणत हो जाता है, कवि का वह कविधर्म एक विशिष्ट प्राण का द्योतक है। प्राण का यह विशिष्ट स्वरूप है, तभी वे भाव कलामय रूप में प्रकाशित हो सके। इस विशिष्ट प्राणधर्म के बगैर

साहित्य म प्राण का सचार नहीं होता, यदि देखा जाय तो मालूम होगा कि युगों की राष्ट्रीय चेतना, उसका भूत तथा वर्तमान जोकि उसके जाग्रत तथा सुप्त चेतना *Subconsciousness* म प्रसारित है, कवि के वैयक्तिक प्राण की तह मे है।"

बंगला के प्राचीन कवि

बँगला का प्राचीन साहित्य हिन्दी की तरह समृद्ध चाहे न हो, किन्तु उसमे बहुत से ऐसे कवि जैसे काशीरामदास, कृत्तिवास, मुकुन्दराम चक्रवर्ती, गोविन्ददास, भारतचन्द्र राय, रामप्रसाद सेन, ज्ञानदास आदि हुए हैं जिनके सम्बन्ध में हम आज चाहे कुछ भी कहे यह मानना ही पड़ेगा कि बँगाली जाति की आत्मा के साथ उनका अन्तरंग सम्बन्ध था, किन्तु जाति+ की आत्मा कोई शाश्वत वस्तु नहीं, वह भी बदलती रहती है। बाहरी प्रभाव जिनमें आर्थिक कारण है, आवागमन की सुविधा या अभाव, विदेशी साहित्य ही के कारण जिस चीज को हमने राष्ट्र की आत्मा कहा है वह बदलती या विकसित होती है। इसीको दूसरे शब्दों मे *Zeit geist* याने युगमन कहते हैं, यद्यपि युगमन राष्ट्रीय आत्मा से कहीं व्यापक शब्द है। बंगला का पदावली साहित्य चाहे कितना भी सुन्दर रहा हो, और सुन्दर वह है इसमें सन्देह नहीं, किन्तु जब पाश्चात्य के साथ प्राच्य का निकट सम्बन्ध हो गया उसकी समाज व्यवस्था, आर्थिक संगठन तथा साहित्य हमारे ऊपर प्रभाव डालने लगा तो पदावली साहित्य की विचारधारा तथा शैली हमारे लिये एक दूर की चीज हो गई।"

'वैष्णव कवियों ने जिस तरीके से तथा जिस दृष्टि से जगत को, जीवन को तथा मनुष्य को देखा था, नये युग के इन कवियों के लिये उन्हे उसी दृष्टि से देखना असंभव था। वैष्णव कविता चाहे जितनी महान तथा सुन्दर रही हो, वही

+बंगाली शब्द के साथ जाति शब्द का प्रयोग *nation* अर्थ में नहीं किया गया —लेखक

कविता का एकमात्र आदर्श है, या उन्हींको बंगाल के कवि हमेशा अपनाकर पड़े रहेंगे यह एक व्यर्थ की आकांक्षा है। भावुकता का स्रोत हमेशा नई धारा में नये दृश्यों के बीच प्रवाहित होता है, उसे बाँधकर कौन रख सकता है, भला भागीरथी को फिर गंगोत्री में कौन ले जा सकता है? बँगाल के साहित्य में यह पट परिवर्तन, तथा वातावरण के बदल जाने को हम केवल मोह कहकर टाल दें यह नहीं हो सकता। नये युग का बंगला साहित्य केवल अंग्रेजी साहित्य की क्षीण प्रतिध्वनि था, यह कहना गलत होगा। मान लिया जाय कि अंग्रेज भारतवर्ष में नहीं आते तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि बँगला में घुमाफिराकर विद्यापति और चंडीदास की ही सृष्टि होती। यदि यह मान लिया जाय कि बँगला के इन कवियों में प्रतिभा थी तो मानना ही पड़ेगा कि ये कलाकार युगमन के तकाजे के अनुसार साहित्य को नये तरीके से तोड़कर सृजन करते"।

साहित्यिक शुद्धता

"जगत में कोई भी जाति ऐसी नहीं है जो सम्पूर्ण रूप से अपने साहित्यिक रक्त की शुद्धता को कायम रख सकी हो। शायद ऐसी कोई जाति हो भी नहीं सकती। वर्णशङ्करत्व से ही जातियों की उत्पत्ति हुई है। दुनिया का कोई भी साहित्य स्वयंसिद्ध नहीं है, विशेषकर जबकि आवागमन सुविधाजनक हो गया, तब तो इच्छा करने पर भी कोई जाति कछुए की तरह अपने साहित्य को अपने अन्दर बन्द नहीं कर सकती थी।"

अंग्रेजी साहित्य के तीन महायुग

"अंग्रेजी साहित्य की बात ली जाय। अंग्रेजी साहित्य को तीन महायुगों में विभक्त करने पर देखा जायगा कि तीनों महायुग के मूल में विदेशी प्रभाव है। पहिले युग के अंग्रेजी साहित्य के उत्स-स्थल चासर ने अपनी कविता की प्रेरणा फ्रान्स और इटली से ली थी। इसके बाद एलिजाबेथीय युग का आरंभ जिन लोगों से

हुआ था वह वाट (*Watt*) तथा सरे (*Surrey*) अपना गीत इटली से ले आये थे। वर्डसवर्थ ने पहिले फ्रांस से प्रेरणा ली फिर कोलरिज के साथ जर्मनी घूमकर लौटने के बाद जर्मनी से कविता की प्रेरणा ली। आधुनिक रासेटी ने इटली और फ्रान्स से, मोरिस ने स्कन्डिनेविया के सागा साहित्य से, तथा स्विनबर्न ने सभी जगह से प्रेरणा ली। इसी प्रकार यदि फ्रेन्च साहित्य ने स्पेन, जर्मनी तथा अंग्रेजी साहित्य से अनुप्रेरणा न ली होती तो वह भी अपने *Troubere* और *Troubadour* तक ही समाप्त हो जाता। सारा लैटिन साहित्य तो ग्रीक साहित्य की छाया में ही उपजा है, फिर भी लैटिन साहित्य में अपनी विशेषता है इसे कौन अस्वीकार कर सकता है। ग्रीक साहित्य की इस बाढ के विरुद्ध कटो कितना लडे, किन्तु उन्होंने अन्त तक स्वयं ही युगमन के प्रभाव में आकर अस्सी साल की उम्र में ग्रीक सीखना शुरू किया।"+

पाश्चात्य प्रभाव की महत्ता

बंगला साहित्य के समालोचकों ने पाश्चात्य के इस प्रभाव को घटाकर दिखाने की चेष्टा नहीं की। स्वयं रवीन्द्रनाथ ने भी देखा गया ऐसा नहीं किया। श्री नलिनीकान्त गुप्त ने आधुनिक बँगला साहित्य पर लिखते हुए स्पष्ट ही लिखा है "आधुनिक बँगला साहित्य के जीवन में हम तीन सन्धिस्थल देखते हैं, और तीन अवसरों पर तीन महापुरुषों का आविर्भाव हुआ है। इन तीनों विभूतियों ने नवजीवन की जो धारा बहाई है उसका स्रोत इन्होंने पाश्चात्य या और भी साफ-साफ कहा जाय तो इङ्गलैंड में पाया है। पहिले राममोहन, दूसरे मधुसूदन, तीसरे रवीन्द्रनाथ। आधुनिक बँगला साहित्य में ये तीनों एक-एक युग के प्रवर्तक हैं, विदेशी शैली तथा साहित्य में निस्नात होकर इन तीनों ने बँगला को घर की चहारदीवारी में निकालकर विश्वसभा में प्रतिष्ठित किया। चासर

+ नलिनीकान्त गुप्त—प्रवासी ज्येष्ठ १३२५)

के बाद डेढ़ सौ वर्ष तक अङ्गरेजी साहित्य में जैसे एक अन्धकार का युग सा आ गया है उसी तरह चंडीदास तथा वैष्णव कवियों के बाद बँगला साहित्य कई सौ वर्ष अन्धकार में पड़ा था। इस दौरान में कवियों का एकदम अभाव था यह बात नहीं, पद्य प्रचुरता से लिखा गया, किन्तु कवित्व रूप धधकती, सुलगती, जलती हुई प्रतिभा की मशाल हम किसी के हाथ में नहीं देखते। जो कुछ था उसे हम मुमूर्षु के किसी प्रकार से बड़ी देर तक जीते रहने का प्रयास मात्र कह सकते हैं। इस जीवनरूपी नदी का मुँह पाश्चात्य भावों से ओतप्रोत राममोहन ने खोल दिया। मधुसूदन ने उसकी तरह प्रतिभा के प्रहार से उसके दोनों किनारों को तोड़कर उसका मुँह चौड़ा कर दिया। रवीन्द्रनाथ ने तो बढ़कर इस धारा को प्रशस्तकर उसमें एक महाप्लावन को ही ला दिया।"

बँगला की उन्नति का कारण

नलिनी बाबू ने लिखा है और मैं भी इसे मानता हूँ कि भारतवर्ष की भाषाओं में बँगला भाषा जो इस साहित्यिक उच्चता को पहुँची उसका कारण है कि जब पहिले-पहल अंग्रेजी प्रभाव यहाँ आया तो बंगाल ने बड़े तपाक से उसे अपनाया। "विदेशी भावुकता के पहिले प्लावन में बंगाल यदि इस प्रकार अपने को छोड़ न देता, यदि वह जाति नष्ट होने के भय से पीछे हट जाता, तो वह महाजीवन के स्रोत से दूर पड़ा रहता। सम्भव है हम पदावली साहित्य का चर्वित चर्वण करते रहते, किन्तु हमें न "मेघनादवध" न 'कपालकुण्डला' न 'विषवृक्ष' न 'सोनार तरी' का दर्शन होता।" फिर बँगला को विश्वसाहित्य में तो कभी भी स्थान न मिलता।

नया साहित्य

"पाश्चात्य के प्रभाव में आने के बाद बँगला साहित्य का जो निर्माण होने लगा, वह पहिले के बँगला साहित्य से दूसरी तरह का था इसमें सन्देह नहीं। चंडीदास से दाशरथी राय तक बंगला

साहित्य का विस्तार जितना था, इसका क्षेत्र उससे कहीं बड़कर था। इस नये साहित्य में जो विचार तथा भाव आये, वे दाशरथी राय ऐसे कवियों की कल्पना के बाहर की बातें थीं। इस नये साहित्य का रंगढंग, गति यहाँ तक कि प्राण में भी विभिन्नता थी। यह बारबार कहा जाता है कि इस नये युग के प्रारंभ में बंगालियों के सम्मुख जब पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान की प्रकाण्ड थाली परोसी गई तो भूखा बंगाली उस पर टूट पडा। उसने खाया तो खूब, किन्तु हजम नहीं हुआ। इसके फलस्वरूप जो हमें नये युग के साहित्य के नाम से हमारे सामने आया, वह उनके हृदय का रक्त नहीं था, बल्कि खाये हुए अजीर्ण द्रव्यों का उद्गार मात्र था। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे उद्गार भी साहित्य के दरबार में आये।"+

पाश्चात्य प्रभाव से पथभ्रष्ट

सच बात तो यह है पाश्चात्य प्रभाव जब इस तरह एक प्रबल आँधी की तरह बँगला के कवि साहित्यिकों के सूक्ष्म जगत में आया, तो उनमें से बहुतों के पैर उखड गये, कई लडखडा कर रह गये। क्रमशः यह लडखडाना छूटा नहीं। बडे बडों का यही हाल रहा। फलस्वरूप बँगला काव्य में जब यह पाश्चात्य प्रभाव की बाढ का युग था, उसी समय एक दूसरा आन्दोलन भी वहाँ चल निकला वह यह कि इससे मुक्त हो जाओ। इस युग के बँगला के कवियों में हम इन्हीं शक्तियों का बल और ह्रास देखते हैं। "कवि हेमचन्द्र में हम एक विशुद्ध बंगाली का हृदय पाते हैं, किन्तु वह प्राण बलिष्ठ होने पर भी अलस है, वह जोरों से इस आँधी से आन्दोलित ही नहीं हुआ। जिस पाश्चात्य रोशनी से माइकेल मधुसूदन की सजगचेतना स्तंभित हो गई थी, किन्तु फिर भी उस रोशनी में उसने बँगला की कायलक्ष्मी को प्रत्यक्ष किया, वही वह्निहेमचन्द्र का स्थूल आत्मतृप्त बंगालीपन को भेद नहीं कर पाया। कवि नवीनचन्द्र में आवेग था, किन्तु

डा० नरेशचन्द सेन गुप्त

रह आवेग अन्ध था, वे बिलकुल आत्मसचेतन नहीं थे, आत्माभिमानी थे। उनके मन में विचार तथा कल्पनाओं का अगाध अधिकार था, फिर भी वह ऊपर ही ऊपर रह जाते थे, अन्तर में पैठकर वह काव्यसृष्टि की गहरी प्रेरणा नहीं हो पाती। एक एक *id a* जैसे उन पर दखल जमा लेता था, अङ्गरेजी शिक्षा का गर्व इसके मूल में था। इस अङ्गरेजी शिक्षा गर्व के साथ अत्यन्त देशी अतिभावुकता मिलकर जिन काव्यों की सृष्टि हुई है उन्हें देखकर हृदय में एक अजीब गुदगुदी पैदा होती है।" +अवश्य ये ही बातें सुरेन्द्रनाथ मजुमदार में जाकर एक कलामय समन्वय में पहुँचती हैं। अठारहवीं सदी के अंग्रेजी साहित्य में जो विचारशीलता तथा युक्ति की प्रधानता थी उसके साथ बंगाली भावुकता के समन्वय की चेष्टा उन्होंने की। उनकी यह चेष्टा पूर्ण रूप से सफलता मंडित न हो सकी, इस असाध्य साधन के लिये एक महान प्रतिभा की जरूरत थी, फिर भी वे एक मध्य मार्ग अवलम्बन करने में सफल हुए। इनकी रचनाओं में कवित्व और बुद्धि का एक सुन्दर तारतम्य हम पाते हैं। न हेमचन्द्र की तरह महाकाव्य-लेखन के प्रयास में ही इन्होंने अपनी सारी शक्ति व्यय कर डाली न नवीनचन्द्र की तरह महाकाव्य रचना के नाम पर धर्म तथा राजनैतिक वक्तृत्रों को उन्होंने अतुकान्त कविता में लिपिबद्ध किया।

आधुनिक बङ्गला का उद्भव काल

नवीन बँगला साहित्य के यथार्थ उद्भव काल हम १८७० (१८८०) से मानते हैं। राजनीति में यही काल प्रबल आलोडन विलोडन का समय है। १८५७ का गदर कोई पूर्वापरसम्बन्धहीन घटना नहीं है, उसका मूल १८५७ से पहिले के काल में प्रमाणित है। गदर के इधर तथा उधर जो आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन हुए, जो विचारों, स्वार्थों, आदर्शों तथा पद्धतियों का संघर्ष हुआ उसके फलस्वरूप साहित्य

+श्री मोहितलाल मजुमदार--

म एक नये युग का प्रवर्तन कोई आश्चय की बात नहा थी। माइकेल मधुसूदन का मेघनाद वध, बिहारीलाल का सारदामंगल, नवीनचन्द्र का पलाशीर युद्ध, हेमचन्द्र की कवितावली इसी युग म लिखी गई था। ईश्वर गुप्त ने जिस संघर्ष वक्ति आक्रमण की एक झलक ही देखकर अपना किवाड बन्द कर लिया था, वह उनकी मृत्यु के बाद ही बङ्गला साहित्य को पल्लवित पुष्पित करने म समर्थ हुई। पहिले ही कहा जा चुका बहुत से साहित्यिक इस नई रोशनी में बर्दाश्त हो गये, उनके पैर लडखडा गये, यह स्वाभाविक था। समय ने ऐसे कवियों तथा उनकी कविताओं को ग्रस लिया है। इसम कोई दुःख की बात नहीं है, यह भी स्वाभाविक है।

सिलसिला न रहा

अङ्गरेजी सभ्यता, साहित्य के संस्पर्श से पहिले हम कवि भारतचन्द्र में जो कलात्मक शैली, निखरी हुई भाषा तथा सौष्ठव का दर्शन पाते हैं, वह कायम नहीं रह सका। इसका कारण राजनैतिक अव्यवस्थितता तथा सामाजिक कूपमडुकता थी। बात यह है वह संस्कृति ही लुप्त हो चुकी। यदि भारतचन्द्र के बाद साहित्य और भाषा की प्रगति का सिलसिला कायम रहता तो उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में हमें ईश्वर गुप्त तथा "कविवालों" की रचना से अच्छी चीज मिलती, इस प्रकार बाद को बिहारीलाल, माइकेल आदि प्रतिभाओं का बहुत कुछ आभास भाषा तथा शैली को अपने उपयोगी करने में व्ययित करना पडा।

माइकेल और बिहारीलाल

बँगला के आधुनिक साहित्य के इस प्रारंभिक युग मे दो कवि बहुत जबरदस्त हुए हैं। एक माइकेल मधुसूदन दत्त, दूसरे बिहारी लाल। हम इन पर जरा तफसील के साथ आलोचना करेंगे। स्मरण रहे कि वन्देमातरम मन्त्र के ऋषि बङ्किमचन्द्र भी इसी युग की

विभूतियों में हैं, किन्तु चूँकि वे कवि नहीं थे अर्थात् कवि से बढ़कर कहीं बड़े औपन्यासिक तथा गद्यलेखक थे, इसलिये उनकी प्रतिभा का विश्लेषण हमारे इस ग्रन्थ के दायरे में नहीं आता। फिर भी अपने समसामयिक तथा बाद के काव्य साहित्य पर उनका गहरा असर पड़ा है, इस दृष्टि से उन पर कुछ कहकर तभी हम माइकेल तथा बिहारीलाल पर अपना वक्तव्य कहेंगे।

बंकिम एक साहित्यिक क्रान्तिकारी

बंकिमचन्द्र आज हमारे सामने क्रान्तिकारी तो क्या शायद एक प्रतिक्रियावादी जँचें, किन्तु उस जमाने में जब वे थे एक जबरदस्त क्रान्तिकारी के रूप में ही दृष्टिगोचर हुए होंगे इसमें सन्देह नहीं। जाति की विचार शक्ति लुप्त हो चुकी थी, विश्वास ने कुसंस्कार का बाजू कसकर थाम लिया था। किसी भी जिन्दा सिद्धान्त के साथ जाति का सम्पर्क नहीं था। ऐसे समय में विपुल ऐश्वर्यशाली पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का यहाँ प्रवेश हुआ। बंकिम ने इसको श्रद्धा के साथ विचार किया। बंकिम के अपने शब्दों में ही लीजिये, वे श्रीमद्भगवद्गीता की भूमिका में लिखते हैं 'फिर भी मुझे यह कहना ही पड़ता है कि जिसने पाश्चात्य साहित्य, विज्ञान और दर्शन के साथ परिचय प्राप्त कर लिया, वह हर क्षेत्र में प्राचीनों का साथ दे सकेगा। यह सम्भव नहीं जो लोग समझते हैं पाश्चात्य पण्डितों ने जो कुछ कहा है वह सभी गलत है, और हमारे प्राचीनों ने जो कुछ कहा है वह सब ठीक है, मुझे उनसे कोई सहानुभूति नहीं।"

इससे भी स्पष्ट लीजिये, बंकिम लिखते हैं—

"तीन-चार हजार वर्ष पहिले भारतवर्ष के लिये जो विधियाँ संस्थापित हुई थीं, आज हरफ बहरफ उनसे मिलकर कोई नहीं चल सकता। वे ही ऋषिगण यदि आज भारतवर्ष में मौजूद होते तो वे ही कह उठते—'नहीं, यह नहीं चल सकता।' यदि उन

रा इसी प्रकार पालन किया जाय तो हमारे प्रचारित धर्म का इसके द्वारा मामिक विरोध ही होगा।' धम का वह मर्मभाग अमर है, चिरन्तन है, हमशा उसम मानव जाति का कल्याण ही होगा, क्योंकि मनुष्य प्रकृति मे ही उसकी नाव है। विशेप विधियाँ समया नुसार ही सब धर्म म होती है। इसको समय के अनुसार त्याग कर देना चाहिये या बदलना चाहिये।"

वकिम-साहित्य

वकिमचन्द्र की महत्ता केवल इस बात म नहीं है कि वे एक जबर्दस्त सुधारक थे, राममोहन ने इसके पहिले इस गुण मे भारत की और बगाल को एक रास्ता दिखलाया था, किन्तु बकिम की महत्ता इस बात म थी कि वे एक स्रष्टा थे, और उनकी सृष्टिकला को वाहन बनाकर चलती थी। वकिम-साहित्य बहुत कुछ हद तक मध्यवित्त श्रेणी का साहित्य है, उसके अन्दर देश के ग्राम लोगों का चित्र उनके सुख दुःख की धड़कन हम नहीं सुनने को मिलती, फिर भी हम यदि कान डालकर सुन तो जो बहुत-सी समस्यायें उस युग के भारतीय समाज को आलोडित कर रही थीं तथा जो आदर्शों का सघर्ष जोरों के साथ चल रहा था उनको सुन सकते हैं।

वकिमचन्द्र भावबादी थे, वास्तववाद से उनका सम्बन्ध था, किन्तु उतना ही जिससे उनके आदर्श को पैर जमाने का मौका मिले, और वह हवा मे उड़ता हुआ न मालूम पड़े। हम जिसे आज कल साहित्यिक वास्तविकता कहते हैं वह वंकिमचन्द्र के लिये बिलकुल अज्ञात बात थी ऐसा कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। आज कल के विभाजन के अनुसार वकिम को हम रोमाचवादी *Romantic* कह सकते हैं, वकिम की तुलना अग्रेज लेखक स्काट से की जाती है, यह ठीक ही है।

समालोचक मोहितलाल क अनुसार "वकिम के प्रथम उपन्यास 'दुर्गेशनन्दिनी' म साहित्यिक प्रेरणा के अतिरिक्त कुछ नहा था।

'दुर्गेशनन्दिनी', बंगला भाषा का पहिला रोमान्स था, बिलकुल अंग्रेजी रोमान्स के ढंग पर लिखा हुआ। 'मृणालिनी', 'युगलाङ्गुरीय' तथा 'राधारानी' इसी आदर्शानुसार लिखे गये थे। हाँ 'मृणालिनी' के कथानक में देशप्रेम सबसे पहिले दिखाई पड़ा। बंकिमचन्द्र के लिखे हुए उपन्यासों में 'विषवृक्ष' का नम्बर चौथा है, इसमें समाज की समस्यायें सामने आती हैं, 'चन्द्रशेखर' और 'कृष्णकान्त का विल' एक ही प्रेरणा का नतीजा है। 'आनन्द मठ' और 'राजसिंह' में देश प्रेम, 'देवी चौधुरानी' और 'सीताराम' में धर्म समस्या, 'रजनी' में मनस्तत्व और 'इन्दिरा' में केवल गल्प रचना का आनन्द है। विशुद्ध उपन्यास, अर्थात जिनमें समाजनैतिक या धर्मनैतिक कोई अभिप्राय नहीं है उनकी संख्या बहुत ही कम है, और उनमें 'कपालकुंडला' ही सबसे बढ़कर काव्य बना। जिन उपन्यासों में स्वदेश, समाज, धर्म या नीति की प्रेरणा है उन्हीं में बंकिमचन्द्र की कल्पना सबसे अधिक स्फूर्ति प्राप्त कर सकी, चरित्र की महिमा घटनासन्निवेश की स्वच्छता के कारण उनमें नाटकीय सौन्दर्य आ गया है। समस्याओं की गुत्थियाँ बड़ी पचीली होने पर भी मालूम होता है बंकिम की प्रतिभा ने चट्टान की रगड़ से इस्पात की तरह चिंगारियाँ बरसाई हैं। बंकिम फिर भी अपने उपन्यासों से बड़े थे। उनके ग्रन्थों को पढ़ते-पढ़ते बारबार यह उद्गार निकल पड़ता है— *Ecce Homo* "यही आदमी है?"

बंकिम साहित्य में राष्ट्रीयता

पहिले ही कहा जा चुका है बंकिम समाज की एक विशेष श्रेणी के ही इर्द-गिर्द घूमते रहे, किन्तु उनके उपन्यासों ने एक बात में बड़ी मदद की, वह है राष्ट्रीयता का निर्माण। बंकिम ने तर्कों पर इस राष्ट्रीयता नामक चीज को दलीलों से भारतवासियों के मन में प्रतिष्ठित करने की चेष्टा नहीं की, उन्होंने इसके अस्तित्व को एक भारतवासी के जीवन में वैसे ही स्वतःसिद्ध मान लिया जैसे एक

अङ्गरेज मे माना जाने का रिवाज है या था फिर 'आनन्दमठ' 'राजसिंह' आदि लिखना शुरू किया। भारतवर्ष मे अखिल भारतीय राष्ट्रीयता बोध एक बहुत बडी बात है, इसके निमाण म बंकिम का एक बडा भाग है।

माइकेल की कविता

बंकिम की इस थोडी सी जरूरी आलोचना के बाद अब हम माइकेल मधुसूदन की कविता की आलोचना करेंगे। माइकेल की जीवनी सक्षेप में यह है कि वे पाश्चात्य की करीब-करीब सभी प्रधान भाषा जानते थे, पाश्चात्य म उन्होंने खूब भ्रमण भी किया था। पहिले उन्होंने अङ्गरेजी म कविता लिखी, किन्तु बाद को सुझाने पर बगला मे लिखने लगे। एक स्त्री के प्रेम म पडकर वे इसाई हो गये थे। कहना न होगा कि ऐसे व्यक्ति म पाश्चात्य कितनी प्रबलता के साथ होगा, किन्तु वह चाहे कितना भी प्रबल हो बंकिम उनमे प्रबलतर था, तभी वे न तो गुमराह हुए, न उन्होने हवा के सामने घुटना टेक दिया, न उनका काव्य यहा अजीर्णरोगी का उद्गार ज्ञात होता है। 'माइकेल की काव्यप्रेरणा म सबसे प्रबल जो है वह है बाहरी वस्तु का बाहरी रूप। केवल विचित्र वस्तुओं का समझकर उनको दूर म स्थापनकर या पास में बनाकर उनके दर्शन या स्पर्शन से ही आनन्द में ही वे विभोर हैं। छोटी या बडी तस्वीर बात की घात में बातों से आँखों के सामने खडी कर देने मे, या कारीगर की तरह मूर्ति की सुषमा खोज निकालने मे उन्हें कितना आनन्द है, उनकी कल्पना मानो उल्लास की विह्वलता में थिरकने लगती है। उपमा के बाद उपमा का जाल बिछाकर वे जिस रूप को प्रकाश करते हैं वह विचारों की झलक नहा, बाहरी वस्तुओं के विन्यास का सौन्दर्य है। विषाद की प्रतिमा स्वरूपा बन्दिनी सीता के माथे पर सेंदुर को वे गोधूलि के ललाट मे नक्षत्र रत्न की भाँति देखते हैं। वे वस्तु को भाव के द्वारा या भाव को वस्तु के द्वारा स्पष्ट करने के आदी नहीं, वे तो

क वस्तु को स्पष्ट करने के लिये बहुत-सी वस्तुओं को लाकर आँख के सामने ढेर कर देते हैं, वे चित्र को चित्र से ही स्पष्ट करते । आलोक और छाया इन दो ही वर्णों में संगमर्मर की मूर्ति जैसे अपने को प्रकाशित करती है, इसी प्रकार उनकी बनाई हुई मूर्तियाँ अत्यन्त सरल और आम सुख दुख की छाया और आलोक से हमारे सामने स्पष्ट हो जाती हैं। इसलिये देखने में मिल्टन को अनुसरण करते हुए मालूम होने पर भी मधुसूदन मनुष्य की दुनिया को पीछे और नीचे छोड़कर महाकाव्य के अत्युच्च कल्पलोक में सीमाहीन दिगन्त में अपनी कल्पना को भेज नहीं पाये। मनुष्य को ही उन्होंने बड़ा करके देखा था। पुरुष का पौरुष तथा नारी के नारीत्व ने उनके मन की जीभ में जो रस का संचार किया था, उसी की व्याकुलता में ये काव्य लिखे गये हैं। माइकेल को पढ़ने से यह मालूम होता है जैसे इस गायनप्राण बँगला कवि ने एक नये जगत का आविष्कार किया हो, यहाँ हृदय-समुद्र की बलखाई हुई लहरों की अलस फेनरेखा बुलबुलों की माला में विलुप्त हो जाती है, किन्तु उसी के साथ दूर से आया हुआ जल का कलकल और अमानीशा-वाली का आर्तनाद एकान्त निकुञ्ज के वशीरव को एक अपूर्व वेदना से प्रतिध्वनित कर देता है। कविकल्पना के इस नये अभियान ने नये साहित्य की गति को एक निर्देश दिया था, फलस्वरूप मन के सूक्ष्म लीलाविलासों से बेखबर होकर मनुष्य को देह के राज्य में खड़ा करवाकर उसके स्वाभाविक आकार, प्रकार तथा रूप को देखने की आकांक्षा। जगी पाप पुण्य से परे उसके प्राणों की इच्छाएँ नियति के अमोघ नियम से कैसी भीषण-मधुर हो उठती हैं, इस बँगला कवि के चित्त में इसी की प्रेरणा जगी थी। +

माइकेल पर रवीन्द्र

रवीन्द्र ने माइकेल के सम्बन्ध में लिखा है "आधुनिक बँगला

+देखो आधुनिक बाँगला साहित्य, पृ १६

के कविता साहित्य म माइकेल मधुसूदन ने जो इसके प्रथम द्वार-मोचक थे सबसे बढकर दु साहस दिखलाया। उन्होंने जिस मिलटनी बाढ से दुरूह शब्दतरंग उठाकर बंगला भाषा को तरंगित कर दिया, उससे बढकर अपरिचित और अनभ्यस्त बंगाली पाठकों के लिये कुछ भी नहीं था। यह बिलकुल अपरिचित और अनभ्यस्त होते हुए भी इतना अपरिचित नहीं था कि बंगाली पाठक इसे समझ ही न सके। बंगाली शिक्षित समाज अङ्गरेजी साहित्य के जरिये से इस विस्तृततर जगत से परिचित हो चुका था उस समय के शिक्षित बंगाली मिलटन, शेक्सपियर की आन से ज्यादा चर्चा करते थे। इसलिये ज्यों ही बँगला भाषा के वाद्ययन्त्र के जरिये से यही परिचित ताल, लययुक्त जगत उनके सामने आया तो प्रशंसा करने लगे। मधुसूदन की प्रतिभा के कारण बँगला काव्य के रंगमंच पर पहिले पहल प्राच्य पाश्चात्य गले मिले।"

माइकेल का मूल्य

बँगला साहित्य म पाश्चात्य का प्रभाव इस प्रकार द्रुतता के साथ रंग लाने लगा और अब भी ला रहा है, उसका श्रेय बहुत अंश म पद्यसाहित्य में मधुसूदन को है। रवीन्द्रनाथ ने जो कहा है कि वे बंगला पद्यसाहित्य के द्वारमोचनकारी कहाँ हैं वह ठीक ही है। प्राक् पाश्चात्य बंगला तथा भारतीय साहित्य में कुछ विशेष विषय थ जैसे राम और कृष्ण की कथा, वैष्णवी भक्ति का विभिन्न रूप, बहुत हुआ तो चार राजे-महाराजे की गाथा गा दी गई। तुलसीदास, सूरदास, चंडीदास विद्यापति,चन्द्रवरदाइ, भारतचन्द्र, कृत्तिवास इन्हीं को लेकर गाते रहे। इसकी सब। *permutations* और *combinations* गाये, लिखे जा चुके थे। भारतीय कविता साहित्य इन्हीं की चहारदीवारी म घूम घूमकर कातर क्रन्दन कर रहा था। इस बास्तिल (*Bastille*) से उद्धार करने के लिये एक विचारगत क्रान्ति की जरूरत थी। वह

क्रांति पाश्चात्य प्रभाव के कारण सम्भव हुई। मधुसूदन ही वे क्रान्तिकारी थे, जिन्होंने इसका पायना उठाकर इसको सम्भव किया। यह बात नहीं कि माइकेल ने बनाय राम, कृष्ण और पौराणिक गाथाओं को बिलकुल त्याग किया बल्कि सच बात तो यह है माइकेल ने अपनी श्रेष्ठ रचनायें पौराणिक कहानियों तथा व्यक्तियों के इर्द गिर्द लिखीं, किन्तु इनमें एक नया जीवन, एक क्रान्तिकारी रूप से अभिनव दृष्टिकोण, एक नई व्याख्या तथा नया तरीका (*approach*) ला दिया।

मेघनादवध काव्य

मधुसूदन की रचनाओं में मेघनादवध सबसे अच्छा है, इसमें हमारे चिर परिचित राम, लक्ष्मण, सीता, रावण, मेघनाद, प्रमीला आती है, किन्तु कोई यदि समझे कि ये हमारे पुराणों में वर्णित तथा वैष्णव कोमल कांत पदावली के व्यक्तित्व हैं तो बड़ी गलती होगी। नाम तो वे ही हैं, घटनाओं की परम्परा तथा कथानक की समाप्ति (*denouement*) उसी तरह है, किन्तु ये व्यक्ति बिलकुल बदले हुए हैं। मेघनादवध को पढ़कर ऐसा नहीं प्रतीत होता कि राम रावण का युद्ध निरवच्छिन्न रूप से भले बुरे का युद्ध है बल्कि दो उभाकानी राजाओं का युद्ध है या ज्यादा से ज्यादा दो सभ्यताओं के संघर्ष का युद्ध है। माइकेल का मेघनाद लक्ष्मण से कोई बुरा आदमी नहीं जँचता, उसका वध कोई दैत्य का विनाश नहीं बल्कि एक शहीद की शहादत के रूप में हमारे सामने आता है। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते ऐसा मालूम होता है कि यदि हम लड़कपन से राम-लक्ष्मण की जय और मेघनाद की पराजय चाहते न आते तो कदाचित् हमें मेघनाद की जय से ही तृप्ति होती। माइकेल ने मेघनाद को करीब एक दूसरा अभिमन्यु बनाकर छोड़ा है। माइकेल की सीता अच्छी है, किन्तु प्रमीला और अच्छी है। सीता से प्रमीला कुछ कम महिमामयी नहीं मालूम होती। प्रमीला

चरित्र एक नाम के अतिरिक्त सम्पूर्ण रूप से माइकल की ही सृष्टि है, पौराणिकों को इसकी कल्पना भी नहीं थी। देशी और विदेशी सभी आदर्श की तिलोत्तमा यह प्रमीला है, मालूम होता है कविवर ने इस चरित्र को बनाने में अपने उत्साधार के मन वर्ण खर्च कर डाले हैं। इस प्रकार परिचित नामों को कायम रखकर उनको एक नया चरित्र देकर माईकल ने अपनी कविता के लिये, अपने पाठकों के लिये तथा अपने विचारों के लिये अच्छा ही किया है। इस प्रकार वे जो बातें काव्यामोदियों तक पहुँचाना चाहते थे वह और सुगमता के साथ पहुँच गई। माइकेल ने एक काव्य हेक्टरवध भी लिखा है, किन्तु वह बंगाली पाठकों के सामने सफल न हो सका। भारतीय साहित्य के सौभाग्य से माइकेल ने ओडिसि तथा बाइबल से अपने नायक नहीं चुने, नहीं तो केवल नामों के ही कारण उनकी सफलता में सन्देह होता।

वीरांगना काव्य

'वीरांगना' काव्य माइकेल की एक दूसरी अमर रचना है। इसमें वीरांगनाओं के लिखे हुए पत्रों का संग्रह है। द्वारकापति कृष्ण विदर्भाधिपति भीष्मक की कन्या रुक्मिणी का लिखा हुआ एक पत्र इसमें है, जो उन्होंने तब लिखा था जब उनके भाई रुक्मी ने चेदिराजर शिशुपाल के साथ अपनी बहिन के विवाह की बात चलाई। इस पत्र की लिखनेवाली रुक्मिणी है, किन्तु यह पत्र करीब करीब वैसा ही है जैसे एक कालेज की लड़की अपने प्रेमिक को लिखेगी जिसके साथ वह भाग जाने में ही समझती है मुक्ति होगी। *Wooing* के सब वे ही तरीके हैं, लज्जा भी है साथ साथ निर्लज्जता भी। वही आग्रह और अपने प्यारे को सातवें आस्मान पर चढ़ाकर अपने को उसकी अयोग्या समझना। उसमें यह नहीं लिखा गया कि मैं लक्ष्मी हूँ तुम नारायण, यह मूर्ख रुक्मी एक ऐसी बात करने जा रहा है जो असंभव है।

कृष्ण के नाम रुक्मिणी

यह लिखती है—

> निशार स्वपने हेरि पुरुष रतने
> कायमन अभागिनी सँपियाछे तारे,
> देवे साक्षी करि, वरि देवनरोत्तमे
> वरभावे । नारी दासी, नारे उच्चारिते
> नाम तॉर, स्वामी तिनि

"रात में स्वप्न में मैंने उस नररत्न को देखा, तन मन से इस अभागिनी ने देवताओं को साक्षी करके इस देव तथा नरों में उत्तम को वर रूप से वरणकर उन्हें देह तथा मन सौंप दिया। मैं नारी हूँ, दासी हूँ, उनका नाम उच्चारण नहीं कर सकती, क्योंकि वे पति जो हैं।"

एक *feminist* । को जो नारी की स्वतन्त्रता की खोज में जान हथेली पर लिये फिरती हैं, उसको शायद इसकी अन्तिम पंक्तियों में दासी शब्द खटके, किन्तु यदि क्षमा किया जाय तो मैं कहने का साहस करूँगा कि यह स्वाभाविक है। हाँ, आजकल के प्रेम पत्रों में यदि उधर से अपने को दासी लिखा जाता है तो इधर से दास भी लिखा जाता है। अस्तु

रुक्मिणी आगे लिखती है—

> शुनो देव दुःखकथा। हृदय-मन्दिरे
> स्थापि' से सुश्याम-मूर्ति, सन्यासिनी यथा
> पूजे नित्य इष्टदेवे गहन विपिने,
> पूजिताम आमि नाथे। एबे भाग्य-दोषे
> चेदीश्वर नरपाल शिशुपाल नाम,
> (शुनि जनरव) नाकि आसिछेन हेथा
> वरवेशे वरिवारे, हाय अभागीरे

"अब जरा मेरी दुःख कहानी सुनिये। इन्द्र मन्दिर में उस श्याम मूर्ति को रखकर मैं उसकी उसी तरह पूजा करती थी जैसे कोई सन्यासिनी अपने इष्टदेव की गहन विपिन में पूजती है। अब दुर्भाग्य के कारण सुनती हूँ ऐसी अफवाह है कि चेदीश्वर शिशुपाल नामी कोई राजा मुझ अभागी के वररूप में आ रहे हैं।"

कालरूपे शिशुपाल आसिछे सत्वरे—
आइसो ताहार आगे। प्रवेशि' ए देशे
हरो मोरे—हर लये देह और धने
हरिला ए मन यिनि निशार स्वपने।

"सुनती हूँ शिशुपाल काल की तरह जल्दी आ रहा है, आप उससे भी पहिले आयें, और इस देश में प्रवेश कर मुझे हर ले जायें, और उन्हींको मुझे सौंप दें जिन्होंने रात्रि के स्वप्न में मेरा मन हरण कर लिया।"

नीलध्वज के प्रति जना

"नीलध्वज के प्रति जना" नामक पत्र में हम जना का जो चरित्र मिलता है वह माता तथा पत्नी के रूप में, इतनी महीयसी है कि उसके सामने सब क्लासिकल चरित्र फीके पड़ जाते हैं। जब पांडवों ने अश्वमेध का अश्व छोड़ा तो माहेश्वरीपुरी के युवराज प्रवीर ने उस अश्व को पकड़ लिया, इसके फलस्वरूप अर्जुन के हाथ से वह मारा गया। माहेश्वरीपति महाराज नीलध्वज ने इस पर युद्ध न कर अर्जुन से संधि कर ली, इस पर पुत्रशोकातुरा रानी जना ने अपने पति को लिखा—

"राजतोरण में रणवाद्य बज रहा है, घोड़े हिनहिना रहे, हैं हाथी चिंघाड़ रहे हैं, आसमान में राजपताका फहरा रही है, राजसेना मस्त होकर हुंकार छोड़ रही है, किन्तु आखिर क्यों? क्या तुम इसलिये सज रहे हो कि प्रवीर बेटा का प्रतिशोध लिया चाहते हो और अर्जुन

के रक्त से मेरी शोकाग्नि को बुझाना चाहते हो ? यही तो महाराज तुम्हें करता है, तुम क्षत्रिया के मणि तथा महाराट् हो। जाओ मतवाले गजराज की तरह किरीटी के ऊपर सूँडों को आस्फालन करते हुए टूट पड़ो और उसका गर्व रणस्थल में मेटकर उसके कटे हुए मुंड को ले आओ। उस मूढ़ ने अन्याय युद्ध में एक बालक को मार लिया, जाओ महाबाहु जाकर उसे विनाश कर डालो। मैं इस ज्वाला को फिर भूल जाऊँगी। जन्म में मृत्यु तो धरी है ही, विधाता का यही विधान है। जनकुलरत्न वीर प्रवीर मन्मुख समर में रत में रहकर स्वर्ग को गया है इस पर रोने की बात ही क्या है। राजन तुम पृथिवी को पालो, क्षत्रधर्म को अपने भुजबल से पालो तो सही।"

"किन्तु यह क्या, जना ? तू क्या पागल हो रही है ? तुम्हारी सभा में नर्तकी नाच रही है, गायक गा रहा है, वीणा की ध्वनि उमड़ रही है, तुम्हारे पुत्र का हत्यारा तुम्हारे सिंहासन में बैठा है। अब शायद वह तुम्हारा सबसे जबर्दस्त मित्र है। तुम अब अपने अतिथिरत्न की बड़ी सेवा कर रहे हो कितनी लज्जा की बात है। दुःख की यह कहानी मैं अब कहूँ तो किससे ? क्या माहेश्वरी पुरी श्वर नीलध्वज आज पुत्रशोक के मारे लुप्तबुद्धि हो चुके हैं ? जिस कारण विधिना ने राजन तुम्हारा पुत्र हर लिया क्या उसीने तुम्हारी बुद्धि का भी सफाया कर दिया ? नहीं तो भला मुझे समझाओ कि अर्जुन आज तुम्हारी पुरी का सम्मानित अतिथि किस नाते से हो रहा है ? कैसे तुम आज मित्ररूप से उस कर का स्पर्श करते हो जो प्रवीर के रक्त से रंजित हो चुका है। क्या क्षात्रधर्म यही है, तुम्हारा धनुष, तूण, अस्त्र, चर्म कहाँ हैं ? दुश्मन के सीने को चुभते हुए शरों का निशाना बनाने के बजाय क्या आज तुम उन्हें पानों से सभा में तुष्ट कर रहे हो ? जब तुम्हारी यह बातें फैलेंगी तो देशविदेशों में लोग क्या कहेंगे"

"मैं जानती हूँ लोग पार्थ को रथी श्रेष्ठ कहते हैं। झूठी बात, उसने भेष बदलकर स्वयंवर में लाखों राजाओं को उल्लू बनाया। ब्राह्मण समझकर उसके साथ किस राजा ने ढंग से लड़ाई की होगी? खाण्डव को दुष्ट ने कृष्ण की सहायता से जलाया, फिर शिखंडी की आड़ लेकर महापापी ने कौरवों के गौरव वृद्ध पितामह भीष्म को हराया। गुरु द्रोणाचार्य को उसने किस छल से मारा जरा सोचो तो। जब पृथिवी ने रुष्ट होकर महायशा कर्ण के रथ के पहियों को निगल डाला तब उस बर्बर ने कर्ण को मार डाला। मुझे बतलाओ तुम तो स्वयं महारथी हो। क्या यह सब महारथीपना है? यह तो व्याध का काम है कि छल से सिंह को मारता है, किन्तु सिंह अपने रिपु को पराक्रम से ही परास्त करता है।

"राजन, तुम क्या नहीं जानते हो न मालूम आज किस कारण पार्थ के सामने तुम्हारा सिर झुका हुआ। है क्या ब्राह्मण आज चंडाल के पैर की धूल लेगा? +++ किंतु यह सब उलाहना व्यर्थ है तुम आखिर मेरे बड़े ही हो, यदि मैं तुम्हारी भर्त्सना करूँ तो मैं केवल पाप की भागी बनूँगी। मैं कुलनारी, हूँ, विधिना का यही विधान है कि मैं पराधीन हूँ। मुझमें वह शक्ति नहीं कि अपनी शक्ति से अपनी इच्छा पूर्ण करूँ। दुर्मति अर्जुन ने मुझे पुत्रहीना कर दिया, मालूम होता है विधाता ने इस कौंतेय को इस कारण पैदा किया कि यह लोगों के सुख का नाश करता फिरे। तुम पति मेरे प्रति दुर्भाग्य से वाम हो रहे हो। फिर मैं इस संसार में जीऊँ तो किस लिये और क्या? आज यह विपुल जनसंख्यावाली पृथ्वी मेरे लिये निर्जन हो चुकी है। इस जले हुए ललाट पर विधिना ने जो लिखा है वह अब होकर ही रहा।"

"हाय मेरा शरीर! क्या इसीलिये तुझे मैंने दस मास दस दिन तक कष्ट सहकर गर्भ में धारण किया? +-+ क्या इसी प्रकार मां का ऋण चुकाया जाता है? हे आँखें क्यों तुम बरस रही हो?

कौन तुम्हारे आँसुओं को पोछनेवाला है ? हे मन क्यों तू जलता है ? अरे मणिहीन फणी तेरा शिरोमणि तो पार्थ के शर से खंड खंड हो चुका, अब नारी के अन्दर मुँह छिपाकर रोना ही तेरे लिये रह गया है। जाओ महाबाहु अपने मित्र पार्थ के साथ जाओ, यह अभागी तो अब महायात्राकर इस ससार से जाती है। मैं चन्द्रकुल-वाली हूँ और चन्द्रकुल वधू भी, कैसे मैं यह अपमान सह सकती हूँ। मैं तो जाकर जाह्नवी के जल म अपना प्राण दिये देती हूँ। देखूँ यदि कृतान्त के यहाँ जाकर मेरे शोक का अन्त हो। मैं हमेशा के लिये तुम्हारे चरणों से विदा माँगती हूँ। जब तुम अपने प्रासाद मे लौटोगे तो यदि तुम "जना कहाँ है ?" करके पुकारो तो प्रतिध्वनि जवाब देगी "जना कहाँ है ?"

नवीन साहित्य में व्यक्तिस्वातन्त्र्य

कहाँ वैयक्तिक स्वतत्रतालवलेश शून्य वैष्णव-कविता और कहाँ माईकेल की यह पग-पग पर अपने लिये स्वतत्र रास्ता निकालकर भूमती हुई चलनेवाली कविता। माइकेल ने अपने इन भावों को निमने आत्मप्रकाश में कठिनता न हो अतुकान्त को अपनाया, किन्तु कृत्तिवास काशीरामदास तथा पदावली के पयार छन्द को अपनाया, किन्तु उसकी गति बदलकर उसमे नये जीवनप्रवाह का सचार किया। वह युग ही ऐसा था कि सभी क्षेत्र मे नयेपन की गुजाइश थी। आज बगला इस मर्यादा को पहुँचा है कि उसमे सूक्ष्म से सूक्ष्म कविता तथा स्थूल से स्थूल विज्ञान लिखा जा सकता है, किन्तु मधुसूदन के युग में भाषा नये युग के प्रयोजन बनकि रहना चाहिये नये युग के सतत वृद्धिशील प्रयोजन के अनुसार पिछड़ी हुई थी। मधुसूदन को इसलिये वीणा धारण करने के लिये वीणा की लकड़ी काटनी पड़ी, तार बनाने पड़े तब वीणा पर आलाप शुरू किया। मधुसूदन की भाषा दुरूह है, इसमें संस्कृत के तत्सम शब्द, बड़े-बड़े समास बहुत हैं, किन्तु "फिर भी" समालोचक मोहितलाल लिखते

है "माइकेल के शब्दों की दुरूहता ने बंगाली पाठकों को उतना नहीं भरमाया जितना रवीन्द्रनाथ की भाषा की अनभ्यस्त शैली ने लोगों को परेशान किया।"

कविता और छन्द

कविता में छन्द एक प्रमुख वस्तु है। आज आधुनिक बँगला कविता में हम ऐसी कविता का साक्षात्कार होगा जिसमें छन्द नहीं है, याने कोई छन्द दिखाई नहीं पड़ता, एक नाटकीय ढंग से पढ़ना भर रह गया है। इसको हम (*rhythmic prose*) कह सकते हैं, लेकिन ऐसा तो हम सभी अतुकान्त यहाँ तक कि तुकान्त कविता को कह सकते हैं। अस्तु।

छन्द साहित्य की एक कृत्रिम पद्धति

आज बहुत से लोग छन्द को साहित्य की एक कृत्रिम पद्धति समझते हैं। वे आज छन्द के बन्धन से मुक्त होकर स्वेच्छाविचरण करना चाहते हैं, किन्तु कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने कहा है यह बन्धन केवल बाहरी है। आन्तरिक रूप से यह मुक्त ही है। "शब्दों को उनके जड़धर्म से मुक्ति देने के लिये ही छन्द का तकाजा होता है। सितार का तार बँधा जरूर रहता है, किन्तु तभी तो उसमें से सुर मुक्त होकर बह सकता है। छन्द उसी प्रकार तार बँधा हुआ सितार है, शब्द के आन्तरिक सुरलय को वह मुक्त कर देता है। छन्द धनुष के गुण की तरह है। उसके जरिये हृदय रूपी लक्ष्य को बेधकर ही मानता।" सुर जैसे हृदय पर एक रहस्यमय तरीके से अधिकार जमा लेता है, उसी प्रकार छन्द शब्दों में एक सुन्दर पैना कर देता है जो परिभाषा की पकड़ में नहीं आता। एक अंग्रेज समालोचक ने लिखा है छन्द का संगीत हमारी बुद्धिवृत्ति को थपकियाँ देकर सुला देता है, फिर उसके सामने एक स्वप्नलोक अवतरित कर देता है, यही कविता की सफलता का रहस्य है।

बँगला के मूल छन्द

मधुसूदन ने इसीलिये छन्द को तो नहीं त्यागा किन्तु अपनी प्रतिभा की निपुल दृष्टि से उसे अपने भावों के अनुरूप कर लिया। पदावली साहित्य के युग में, मधुसूदन के युग में और आज भी बँगला छन्द एक बहुत ही सरल वस्तु है। हिन्दी छन्दों की तरह बँगला छन्द को आयत्त करने के लिये किसी को पिंगल पढ़ने की या कठिन अभ्यास की जरूरत नहीं, यह भी एक कारण है कि बँगला में कविता की इतनी उन्नति हो सकी। प्राचीन बँगला में सच पूछा जाय तो पयार, त्रिपदी, चौपदी आदि चार ही पाँच छन्द थे, इनके मिश्रण से जो छन्द होते थे वे मिश्र छन्द कहलाते थे। अवश्य भारतचन्द्र ऐसे कवियों ने सफलतापूर्वक कुछ संस्कृत छन्द भी बँगला में आमदनी की, किन्तु वे छन्द बँगला शब्दों की उच्चारण पद्धति के साथ सामञ्जस्य-हीन होने के कारण दूसरे कवियों ने उसे नहीं अपनाया। 'त्रिपदी' दीर्घ त्रिपदी और चौपदी में यति दुरूस्त होते थे, फिर पग-पग पर सुर मिलाना पड़ता था, इस कारण मधुसूदन को जो बँगला कविता उत्तराधिकार सूत्र से मिली वह भार-ग्रस्त और रीढ़शून्य थी। मधुसूदन ने पयार को ही लिया, किन्तु उसको नये तरीके से ढाल-कर उसमें नये संगीत की सृष्टि की। यह असाध्य साधन वे अपनी भाषा की ही बदौलत करने में समर्थ हुए। +

माइकेल और पयार

माइकेल ने इस पयार को ही महाकाव्य के सुर में बाँध दिया। इस प्रकार माइकेल ने केवल विचार जगत में ही एक बिलकुल नया जगत नहीं पैदा किया, बल्कि उस विचार के लिये उपयुक्त वाहन का भी निर्माण किया। भाषा और छन्द यदि भावों से आगे निकल

+देखो आधुनिक बँगला साहित्य, पृ ११५

गये या पीछे रह गये तो कवि को सफलता नहा मिलती इसलिये अधिक या कम प्रत्येक कवि को अपनी भाषा तथा छन्द आदि तैयार करना पडता है। इसीको हम किसी कवि की शैली कहते। मधुसूदन ने जैसे पौराणिक नामों को लेकर उनको बिलकुल अपौराणिक आधुनिक बना लिया, उसी प्रकार उन्होंने बंगला छन्दो मे विशेषकर पयार को ग्रहण करते हुए उसम ऐसे परिवर्तन कर दिये जो वैष्णव कवियों के लिये अकल्पनीय थे। पयार मे चौदह अक्षर होते हैं। "उसके आठ पैर होते, किन्तु उसको कितने प्रकार से चलाया जा सकता है इसका प्रमाण माइकेल के 'मेघनादवध' काव्य म मिलता है। उस महाकाव्य की अवतारणा की प्रथम पंक्तियों को ही लीजिये। इन पंक्तियों म ही उन्होंने विभिन्न वजन का सुर अलापा है, किसी जगह पर भी पयार को उन्होंने प्रचलित यतिस्थान पर रुकने नहा दिया। पहिली पंक्ति म ही वीर वाहु की नीरसर्यादा सुर भीर होकर बज उठी—

सम्मुखसमर पोडि वीर चूडामणि वीरबाहु(१)

फिर जैसे उनकी अकालमृत्यु का संवाद जैसे टूटी हुई रणपताका की तरह टूट हुए छन्दों म टूट पडा

चलि कवे गेला यमपुर अकाले(२)

फिर जैसे छन्द ने झुककर मंगलाचरण किया

कह हे देवी अमृतभाषिणी(३)

फिर इसके बाद असली बात जो सबसे महत्त्वपूर्ण है, परिणाम की सूचना की तरह जैसे आनेवाली आँधी के सुदीर्घ मेघगर्जन की तरह क्षितिज की एक ओर मे दूसरी ओर तक प्रतिध्वनित होती है—

---

(१)वीर चूडामणि वीरबाहु सन्मुखसमर म खेत रहकर
(२)चन्न अकाल ही यमपुर चले गये
(३)तो बताओ ह देवी अमृतभाषिणी

केन वीरवरे वरि सेनापति पदे
पाठाइलो रणे पुन रक्षःकुलनिधि
राघवारि(४) यह माइकेल का चमत्कार है।"(५)

अतुकान्त होने के कारण कवि को क्या तुक खोजने के लिये कहीं अपने भावों को कुंठित नहीं करना पड़ा।

कवि बिहारीलाल चक्रवर्ती

इस युग के दूसरे प्रतिभावान कवि का नाम जैसा पहिले ही बताया गया बिहारीलाल चक्रवर्ती था। "मजे की बात यह है कि रवीन्द्र रवीन्द्र के अतिरिक्त और भी बहुत से समसामयिक कवि उन्हें अपना काव्यगुरु करके मानने पर भी उनको माइकेल मधुसूदन के मुकाबले में बँगाल के बाहर ही में कम लोग जानते हैं ऐसा नहीं बल्कि बंगाल में भी वे कम प्रसिद्ध हैं। फिर भी बँगला साहित्य में बिहारीलाल का स्थान माइकेल से कुछ दूर नहीं है, बल्कि बाद को चलकर बिहारीलाल की विशेष काव्य-साधना ही बँगला साहित्य में अधिक रंग लाई। बिहारीलाल की काव्यप्रेरणा मधुसूदन के मुकाबले में और भी सरल और स्वतःस्फूर्त थी, साथ ही बँगाली जाति के भावों के अनुकूल थी। इस दृष्टि से आधुनिक बँगला काव्य के इतिहास में बिहारीलाल एक व्यक्ति नहीं बल्कि युग प्रवर्तक थे।"+

बिहारीलाल की कविता

बिहारीलाल ने 'सारदामंगल, 'प्रेम प्रवाहिनी, 'बन्धुवियोग, 'निसर्ग सन्दर्शन,' 'बाउलविंशति' 'सङ्गीतशतक' आदि कई एक काव्यग्रन्थ लिखे, किन्तु आज बँगाली समाज में इनको पढ़नेवालों

(४)राघवारि रक्षःकुलनिधि ने किस वीरवीरवर को सेनापति पद में वरण कर भेजा

(५)देखिए सहनपत्र चैत्र १३२५ में रवीन्द्रनाथ का छन्द लेख

+ श्री मोहितलाल मजुमदार के आधार पर बिहारीलाल मुख्यतः लिखा गया

की संख्या बहुत ही कम है। बात यह है बिहारीलाल की प्रतिभा मुख्यतः *lyric* थी, गीत गाते-गाते वे इतना विभोर हो जाते थे कि वे भूल ही जाते थे कि उनके सामने श्रोता हैं। उनकी उड़ान अत्यन्त *subjective* (आत्मपरायण) उड़ान है। उनके काव्य में गम्भीरता और सर्वेन्द्रियता जितनी हृदयस्पर्शी है, भाव की मूर्ति उतनी स्पष्ट नहीं है। इस कारण वे साहित्य में एक नवीन रीति के प्रवर्तक होते हुए भी साधारण कविताप्रेमी पाठक के प्रिय नहीं हो सके। मधुसूदन के मुकाबले में तो वे कम पढ़े ही जाते हैं, किन्तु नवीनचन्द्र और हेमचन्द्र से भी वे कम पढ़े जाते हैं। यह प्रथम दृष्टि में आश्चर्यजनक होते हुए इसका कारण स्पष्ट है, और वह यह है कि नवीनचन्द्र और हेमचन्द्र चाहे कवि रूप में इनसे कितने ही निकृष्ट रहे हों, किन्तु उन्होंने पलाशी का युद्ध प्रभृति ऐसा विषय लिया था जो कितना भी बिगड़ता तो उसकी एक हद थी।

बिहारीलाल की भाषा

बिहारीलाल की भाषा एक विशेष भाषा है। समालोचक कवि मोहितलाल के अनुसार उनके भाव शिशु की तरह सरल हैं तो उनकी भाषा भी शिशु की तरह नम्र अकृत्रिम है। बिहारीलाल की यह भाषा ही जैसे उनकी काव्यरचना की विशेष प्रतिभामयी भाषा है। बिहारीलाल के 'काव्य सारदामंगल' को पढ़ने से हम उनकी भाषा की कला (जिसको *unpremeditated art* कहेंगे) पग पग पर खूब देखने को मिलती है। कविवर कीट्स ने जिस प्रकार से कवि—स्वप्न को

—*upon the night's starred face*

Huge cloudy symbols of a high romance

बतलाया है, उस प्रकार के रूप-रस की उत्कंठा उनमें नहीं थी। उनके काव्य में विचार से बढ़कर भाव, कल्पना से बढ़कर प्रीति विभोरता जो नहीं है उसकी उद्भावना में जो है उसीसे आनन्दलोकसृष्टि की साधना हम अधिक देखते हैं।

आत्मनिमग्न विहारीलाल

विहारीलाल की यह आत्मनिमग्नता कहीं इतनी अधिक हो जाती है कि वह पाठक के उपहास की वस्तु हो जाती है। समझ ही में नहीं आता कि इसमें कवितापन कहाँ है। अपने बाल्यबन्धु पूर्णचन्द्र की मृत्यु पर वे एक कविता लिख गये जिसमें वे मित्र की इसलिये प्रशंसा करते दिखाई देते हैं कि वे एक दिन गंगा नहा रहे थे, ऐसे समय में एक नाव डूब गई। उस नाव का मल्लाह बच गया किन्तु उसका कपड़ा बह गया। वह किनारे पर कम पानी में आकर थरथर काँपने लगा, किन्तु उसे हिम्मत न हुई कि किसी से कपड़ा माँगे। पूर्णचन्द्र ने उसे अपना कपड़ा दे दिया और खुद अँगोछा पहिनकर घर चले आये। इस घटना को कवि ने नमक-मिर्च न मिलाकर ऐसे ही लिख दिया जैसे मैंने उसका विवरण लिखा। कहना न होगा यह कोई कविता नहीं है, किन्तु इससे वही बात साबित होती है जो मैं पहिले लिख आया याने कवि विहारीलाल को अपने ही भावों की परवाह है, श्रोताओं की नहीं। सौभाग्य से इस तरह की आत्मकेन्द्रित कविता उनकी रचना में कम है। कुछ भी हो विहारीलाल की कविता इतनी सरल है कि हम सहज ही में कवि के हृदय की धड़कन को गिन सकते हैं।

विहारीलाल की 'हिमालय' कविता

हिमालय को कविवर विहारीलाल किस प्रकार चित्रित करते हैं देखने की चीज है, नीचे जो कविता उद्धृत की जायगी उसमें पाठक देखेंगे कि हिमालय कोई प्रस्तरस्तूप नहीं, बल्कि रक्तमांसस्पर्शयुक्त एक विराट शरीर है, जिसके हृदय की धड़कन की यह कविता मानों स्वरलिपि (*Notation*) है। हम इस कविता में साफ देख सकते हैं कि अब बँगला साहित्य में रवीन्द्रनाथ जैसी विभूति आने ही वाली है। विहारीलाल की कविता मानो उस आनेवाली महान प्रतिभा

का पेशखेमा है। हम जरा कान खड़ाकर सुने तो हम रवीन्द्रनाथ के आने की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ेगी। विहारीलाल लिखते है —

असीम नीरद नय
ओ इ गिरि हिमालय
उथुले उठेछे जेनो अनन्त जलधि
व्येपे दिक दिगन्तर
तरंगिया घोरतर
शानिया गगनांगने जागे निरवधि

यह हिमालय पहाड कोई सीमाहीन बादल नहीं है, बल्कि जैसे अनन्त समुद्र उमड़कर खडा हो गया है, सब दिशाओं को बड़े जोरों के साथ व्याप्त तथा तरंगित करता हुआ मानों वह आकाश रूपी आँगन को डुबाता हुआ निरवधि रूप से जाग रहा है।

पदे पृथ्वी, शिरे व्योम,
तुच्छ तारा सूर्य, सोम,
नक्षत्र नखाग्रे जेनो गनिबारे पारे
समुखे सागराम्बरा
छड़िये रयेछे धरा,
कटाक्षे कखन जेनो हेरिछे ताहारे।

चरणा पर उसकी वसुंधरा है, सिर पर आकाश है, सूर्यचन्द्र फिर उसके लिये तुच्छ क्यों न हो, वह तो जैसे नखाग्र से नक्षत्रो को गिन सकता है। सामने सागराम्बरा धरा फैली हुई है, कभी कभी वह कटाक्ष से उसे देख भर लेता है।

कतशत अभ्युदय
कतई विलय लय

चकेर उपरे जेनो घटे घरोइरे
हरहर हरहर
सुरनर थर
प्रलय पिनाक-रान बाजे ना श्रवरो

सैकड़ों अभ्युत्थान और पतन उसकी आँखों के सामने हरेक क्षण होते रहते हैं। हरहर हरहर, सुरनर थरथर काँपते हैं, किन्तु प्रलय का पिनाक रव उसे सुनाई भी नहीं पड़ता।

मटिका दुरन्त मेये
घुरे खेला करे थेये
धरित्री मामिया सिन्धु लोटे पदतले।
ज्वलन्त अनल छवि
धकधक ज्वले रवि
किरन-ज्वलन-ज्वाला माला शोभे गले।

आँधी तो उसकी एक शरारती लड़की भर है, वह दौड़-दौड़ कर उसके सीने पर खेलती है, धारित्री सिन्धु को प्रसन्न उसके पैर पर लोटती है। जलती हुई महान आग की तरह सूर्य धकधक जलता है, किरणों की जलती हुई माला से उसका कंठ सुशोभित है।

कालेर कराल हासि
चमके दामिनी राशि
कड़कड़ दन्ते दन्ते भीषण घर्षण
त्रिजगत त्राहि त्राहि
किछुई भ्रूक्षेप नाहि
के योगेन्द्र व्योमकेश योगे निमगन

काल की कराल हँसी की तरह बिजली कौंध जाती है, दाँत से

का पेशरेमा है। हम जरा कान खड़ाकर सुनें तो हमें रवीन्द्रनाथ के आने की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ेगी। बिहारीलाल लिखते हैं —

असीम नीरद नय
ओइ गिरि हिमालय
उथुले उठेछे जेनो अनन्त जलधि
व्येपे दिक दिगन्तर
तरंगिया घोरतर
मातिया गगनांगने जागे निरवधि

यह हिमालय पहाड़ कोई सीमाहीन बादल नहीं है, बल्कि जैसे अनन्त समुद्र उमड़कर खड़ा हो गया है, सब दिशाओं को बड़े जोरों के साथ व्याप्त तथा तरंगित करता हुआ मानों वह आकाश रूपी आँगन को डुबाता हुआ निरवधि रूप से जाग रहा है।

पदे पृथ्वी, शिरे व्योम,
तुच्छ तारा सूर्य, सोम,
नक्षत्र नखाग्रे जेनो गनिबारे पारे
सम्मुखे सागराम्बरा
छड़िये रयेछे धरा,
कटाक्षे कखन जेनो हेरिछे ताहारे।

चरणों पर उसकी वसुन्धरा है, सिर पर आकाश है, सूर्यचन्द्र फिर उसके लिये तुच्छ क्यों न हो, वह तो जैसे नखाग्र से नक्षत्रों को गिन सकता है। सामने सागराम्बरा धरा फैली हुई है, कभी कभी वह कटाक्ष से उसे देख भर लेता है।

कतशत अभ्युदय
कतई विलय लय

चद्रेर उपरे जेनो घटे चणेदये
हरहर हरहर
थुरनर थर
प्रलय पिनाक-राव नाज ना श्रवणे

सैकड़ों अभ्युत्थान और पतन उसकी आँखों के सामने हरेक क्षण होते रहते हैं। हरहर हरहर, थुरनर थरथर काँपते हैं, किन्तु प्रलय का पिनाक रव उसे सुनाई भी नहीं पड़ता।

मटिका दुरन्त मेये
घुरे खेला कर चेये
धरित्री आसिया सिन्धु लोटे पदतले।
ज्वलन्त अनल छवि
धकधक ज्वले रवि
किरन-नलन-ज्वाला माला शोभे गले।

आँधी तो उसकी एक शरारती लड़की भर है, वह दौड़-दौड़ कर उसके सीने पर खेलती है, धरित्री सिन्धु को प्रसन्न उसके पैर पर लोटती है। जलती हुई महान आग की तरह सूर्य धकधक जलता है, किरणों की जलती हुई माला से उसका कंठ सुशोभित है।

घालेर कराल हासि
भ्रमे दामिनी राशि
कवड दन्ते दन्ते भीषण घर्षण
त्रिजगत त्राहि त्राहि
किंतुर्दे भ्रू चेप नाहि
के योगेन्द्र व्योमकेश योगे निमगन

काल की कराल हँसी की तरह बिजली कौंध जाती है, दाँत से

दाँत पीसकर काल मानों कड़कड़ कड़कड़ शब्द करता है, तीनों भुवन त्राहि त्राहि करते हैं, किन्तु उसे किसी बात की परवाह नहीं, हे योगनिमग्न व्योमकेश तुम भला कौन हो ?

मानों कवि ने इस हिमालय में भारतवर्ष को ही चित्रित कर दिया है, बाहरी प्रभाव के प्रति उदासीन, मुक्त, उदार, अपने में आप समाहित।

बिहारीलाल के युग के कुछ विशिष्ट कवियों की कविताओं का नमूना देकर हम इस दौर को समाप्त करेंगे।

कवि सुरेन्द्रनाथ मजुमदार

सुरेन्द्रनाथ मजुमदार नामक एक कवि इस युग में कहीं कहीं पर बहुत अच्छी कविता लिख गये हैं। मुख्यतः इन्होंने अनुवाद ही किये हैं, किन्तु इनकी एक मौलिक कविता में कवि की वैयक्तिक स्वतन्त्रता कितनी उग्र मालूम होती है

हे कवि-कल्पना माया सत्येर सोनालि छाया
काव्य इन्द्रजाल भानुमती,
सुखे तुमि यथा इच्छा थाको क्रीडावती।
चढ़िया पुष्पक रथे
भ्रमो गिया छायापथे
कर इन्द्रचाप निरचन,
निम्फ़ा करो परीसने चन्द्रिका भोजन,
आमि ना करिबो देवी तव आवाहन।

हे कविकल्पना रूपी माया, सत्य की सुनहरी छाया, काव्य रूपी इन्द्रजाल की भानुमती, क्रीडाशीले तुम्हें जहाँ भी रहना हो सुख से रहो। पुष्पक विमान पर चढ़कर चाहे छायापथ में भ्रमण करो और इन्द्रधनुष बनाओ, या परियों के साथ जाकर चाँदनी में भोजन करो, किन्तु देवी मैं तुम्हारा आवाहन नहीं करने का—

विधातार ए ससारे यारे ना तुषिते पारे—
जे कविर महती कामना,
से कवि कोरिबे देवी तव उपासना।
तोमार मुकुर परे
हेरे से हरषभरे
छाया वार काया नाही जार—
ततो लोकातीत नय वासना आमार
लक्ष्य मम सामान्य ए मर्त्येर ससार।

विधाता का बनाया हुआ यह ससार जिसे तुष्ट नहीं कर सकता, जिस कवि की कामना इससे महान है, वही देवी तुम्हारी उपासना करेगा। वह तुम्हारे दर्पण में आनन्द के साथ उस चीज की छाया देखकर खुश होता है जिसका शरीर ही नहीं है? मेरी वासना इस प्रकार लोकातीत नहीं है, मेरा तो लक्ष्य मामूली यह मर्त्य का संसार है।

ऊपर जो कविता उद्धृत की गई उसको हम पाश्चात्य कवियों का अनुकरण कहकर उड़ा नहीं दे सकते क्योंकि उन्नीसवीं सदी में पाश्चात्य कवि भी बहुत अंश में चाँदनी सेवन करते थे। आजकल के उस भारतीय साहित्य के सम्बन्ध में जो आधुनिक दीखते हुए भी आधुनिक नहीं हैं ऊपर उद्धृत की हुई कविता एक अच्छी समालोचना है। यह भी देखने की बात है सुरेन्द्रनाथ ने अपनी कविता को (*Stanzas*) के रूप में लिखा है।

कविता में नारी की पूजा

हरेक युग की कविता में नारी की पूजा एक प्रधान चीज रही है। कविता की उत्पत्ति का फ्रायडीय सिद्धान्त को यह बात प्रतिपादित करती है। बँगला के प्राचीन साहित्य में राधा, यशोदा,

कौशल्या के रूप में नारी की पूजा बहुत हुई है, किन्तु उर्वशी के रूप में नारी की पूजा इसी युग की विशेषता है। हम रवीन्द्रसाहित्य की आलोचना के अवसर पर इस बात पर आयेंगे, किन्तु "उर्वशी" लिखे जाने के पहिले उर्वशी भाव से नारी पूजा की एक बानगी हमें इन्हीं सुरेन्द्रनाथ मजुमदार की महिला कविता में मिलती है।

वर्णिते ना चाइ हृद नदी सरोवर
सिन्धु शैल वन उपवन,
निर्मल निर्भर, मरु वालुर सागर,
शीत–ग्रीष्म वसन्त वर्तन।
हृदये जेगेछे तान,
पुलके आकुल प्राण
गाबो गीत खुलि हृदि द्वार—
महीयसी महिमा मोहिनी महिलार।

"मैं झील, नदी, तालाब, सिन्धु, पहाड़, वन, उपवन, निर्मल झरना, बालू के सागर मरुभूमि या शीत, ग्रीष्म या वसन्त ऋतु के परावर्तन का वर्णन नहीं करना चाहता। मेरे तो हृदय में तान जगा है, प्राण पुलकित हो रहा है, इसलिये मैं हृदय का द्वार खोलकर मोहिनी महिला की महीयसी महिमा गाऊँगा।"

आगे मूल न देकर बाकी कविता का अनुवाद ही दिया जाता है।

"मन की सुषमा या सविलास विग्रह है, आत्मा के आनन्द की प्रतिमा है, कविता के ध्यान का जैसे साक्षात् साकार है, माया की मुग्धमुखी मूर्ति है, हृदय के जितने काम्य हैं उन सबका संग्रह है। भला मैं रमणी के सम्बन्ध में आये हुए मेरे विचारों को कैसे समझाऊँ?" वह इस संसार रूपी फणी का मणि है, मन्त्र है, महौषधि है।

इस कविता की कुछ पंक्तियाँ या हैं—

एलोकेशी के एलो रूपसी

कोन वनफूल, कोन्, काननेर शशी

बालों को लटकाकर कौन यह रूपसी है, कौन-सा वन फूल है, किस कानन का शशी है।

रवीन्द्रनाथ की "उर्वशी" कविता में एक जगह ऐसे आता है—

वृन्तहीन पुष्प सम आपनाते आपनि विकशि

कबे तुमि फूटीले उर्वशी

ऐसा मालूम होता है रवीन्द्रनाथ की नारी पर लिखी हुई यह सर्वश्रेष्ठ कविता का संगीत सुरेन्द्र मजुमदार की ऊपर की पंक्तियों से मिलता है। अन्त में शी शी (*she* ?) आने से कविता का रस जैसे बढ़ गया है।

इस युग में इतने कवि हुए हैं कि उनकी एक-एक पंक्ति भी दी जाय तो एक बड़ी भारी पुस्तक हो जाय। इसलिये केवल कुछ ही कविता देना संभव है। शिवनाथ शास्त्री की ख्याति मुख्यत एक सुधारक के रूप में है, फिर भी उन्होंने कुछ कवितायें लिखी हैं, उनकी "गभीर निशीथे" नामक कविता पाठकों के सामने पेश की जाती है। ध्यानपूर्वक पढ़ने पर जिसे हम कवितावाद (रहस्यवाद) (*Mysticism*) कहेंगे वह इसमें एक अस्पष्ट रूप में मिलेगा।

गभीर निशीथ में

"कैसी गहरी रात है ? धरणी अन्धकार के सागर में मग्न है, चारों तरफ सुनसान है, पहरेवाला कुत्ता भूक रहा है, उसकी यह आवाज शहर के इस कोने से उस कोने तक जाती है। मानों उसकी प्रतिध्वनि को इमारतें गेंद की तरह उछाल रही हैं। यह कैसी भयकर धात है ? अगाध समुद्र के नीचे एक छोटा-सा कीड़ा जैसे

उसके नीचे की घास म रहता है उसी तरह मैं अपने कमरे म अधकार सागर के गर्भ मे डूबा हुआ हूँ। सब परिजन सोये हुए है, दिशायें कितनी चुपचाप हैं। रात के आकाश मे मानो कोई अदृश्य प्रहरी मुझे जोर से सन-सन फुफकार रहा है। निरन्तर चौंका हुआ दृष्टिगोचर होता है। इस अगाध समुद्र के नीचे पडा पडा मैं पुकार उठता हूँ—'कौन हूँ मैं ? कौन हूँ मैं ओ रजनी! करोडो कीडे-मकोडे, गाव, प्रान्तो को लेकर यह जगत् घूम रहा है, अच्छा पहिले इस धरित्री से ही पूछा जाय—धरित्री तू कौन है ? इस विश्व म तो तू एक धूल की कण है।—फिर मैं, मैं कहाँ हूँ, और कल्पने, भारती स्मृति, मेरे प्यारे धन तुम लोग कौन हो ? मैं कवि हूँ यह मेरा अहङ्कार है, मैं कहाँ हूँ। ओह, मैं तो इस विश्व मे विलीन हो जाता हूँ"

देवेन्द्रनाथ सेन की कविता

कवि देवेन्द्रनाथ सेन तथा अक्षय कुमार बडाल रवीन्द्रनाथ क समसामयिक हैं अर्थात् थ, किन्तु फिर भी कई दृष्टि स उनकी कविता रवीन्द्रयुग के पहिल की कविताओ क साथ अध्ययनयोग्य हैं, इसलिये हम इस दौर म ही उनकी कविता का नमूना देकर इस अध्याय को समाप्त करेंगे। देवेन्द्रनाथ क्या हैं यह उन्हा के अपने मुह से सुनिये—

चिरदिन चिरदिन रूपर पूजारी आमि
रूपेर पूजारी।
सारासन्ध्या सारानिशि रूपवृन्दावने वसि
हिन्दोलाय दोल नारी आनन्दे नेहारि।
अधरे रक्तेर हास नियुतेर परकाश
केशर तरगे नाचे नागेर कुमारी

वासन्ती ओढ़ना साजे   प्रकृतिराधिका नाचे
चरणे घुङ्गुर, बाजे आनन्दे मल्लारि
नगना दोलना कोले मगना राधिका दोले
कविचित्ते कल्पनार अलका उथारि'
आमि से अमृतरूप   पान करि' अहर्निश
संसारेर व्रजवने विपिनविहारी।

"हमेशा से हमेशा से मैं रूप का पुजारी रहा हूँ, रूप का पुजारी। सारी सन्ध्या और सारी रात रूप वृन्दावन के हिंडोरे में झूलुए का मजा लेती रहती है। मैं इसको आनन्द के साथ देखता रहता हूँ। अधरों पर रँगीली हँसी है, मानों विद्युत का प्रकाश हुआ है, बालों की लहरों में मानों नागकुमारी नाच रही है। ओढ़ना वासन्ती रंग का है, प्रकृति रूपी राधा नाच रही है, कविचित्त में कल्पना का उद्रेक होता है। इस अमृतरूप को मैं निःशान पीता रहता हूँ, इस प्रकार मैं संसार के व्रजवन में विपिनविहारी हूँ।"

एक दूसरी कविता

देवेन्द्रनाथ सेन की रचनायें इस अमिट रूपपिपासा से ओत प्रोत हैं, 'लखनऊ का शरीफा' नामक कविता लीजिये। मामूली फलों को लेकर कविकल्पना किस प्रकार अबीरगुलाल की पिचकारी भरती हुई अठखेलियाँ करती चलती है—

"मैं अनार नहीं चाहता जिसका रंग अभिमान से निष्ठुर नव-सुन्दरियों के होठों की लालिमा से मिलता है। मैं सेव भी नहीं चाहता, जो विरहविधुरा जानकी के मुख रुचि की पाण्डुरता लिये हुए है। जरा से रस से भरा हुआ अंगूर, जो नई वधू के लज्जा से दिये हुए चुम्बन की तरह है, भी मैं नहीं चाहता। मैं गन्ने का स्वाद भी नहीं चाहता जो प्रौढ़ दम्पतियों के प्रगाढ़ प्रेमालाप की तरह कठिन में मधुर है। मुझे तो बस वह ऊँची पैदाइश का शरीफा दो, जो लखनऊ के नवाबों के उद्यान में रस से लबरेज लटका रहता है,

किसी नवाबजादी ने आकर छू भर दिया और फट पड़ा। अहा यह मृत्यु भी कैसी विचित्र है, किसी रसिका की रसना के ऊपर मरकर रह जाना।"

आँखिर मिलन

"आँखिर मिलन" नामक कविता लीजिये—

आँखिर मिलन ओ जे—आँखिर मिलन।
लोके ना तुमिलो किछु लोके ना जानिलो किछु
दम्पतिर हलो तबुतव आलापन
हलो मन-जानाजानि हलो मन-टानाटानि
आशाय चिक्कन हासि मनेर रोदन,
चिकचिक फोलाफुलि आँधारे श्यामार बुलि
प्रेमेर विरह घाते चन्दन लेपन
ओई आँखिर मिलन।

"यह तो आँखों का मिलना है आँखों का मिलना, न लोगों ने कुछ जाना, न लोगों ने कुछ कहा, फिर भी मियाँ और बीबी में सैकड़ों बातें हो गईं। एक ने दूसरे के मन को जान लिया, एक ने दूसरे को खींच लिया, आशा की चिक्नी हँसी हो गई, या अभिमान का रोदन हुआ। लज्जाके का मिलना हो गया, अँधेरे में जैसे श्यामा बोल गई, प्रेम और विरह के घाव पर चन्दन का लेप हो गया। बात यह है यह आँखों का मिलना था।"

अक्षयकुमार बड़ाल का 'आह्वान'

अब हम अक्षयकुमार बड़ाल की आह्वान नामक एक कविता का अनुवाद देकर इस दौर को समाप्त करते हैं। इस कविता में प्रकृति के साथ कवि का कितना निकट सम्बन्ध है, फिर उस सम्बन्ध को किस प्रकार दार्शनिकता म अनुवाद किया गया। आधुनिक कविता केवल उपमा, उत्प्रेक्षा की अनवरत घनघटा नहीं है, वरन् उसमें दार्शनिकता

नहीं है, जीवन की सैकड़ों दुर्गन्ध पहेलियों पर एक झलक रोशनी नहीं है, जीवन का स्पन्दन नहीं है तो वह कविता ही नहीं है। कविता बड़ी है इसलिये केवल हम उसका अनुवाद ही पाठक के सामने पेश करेंगे—

'देखो प्रिया इस तरु-लता पुष्प से भरी हुई तथा गिरि नदी सागर से समन्वित पृथिवी को, वह नग्न देह से तथा क्षुब्ध प्राण से आकाश की ओर ताक रही है, न इसमें कोई लज्जा है न कोई छलना ही। फिर देखो इस महाकाश को जो मेघों की राशि के साथ रोशनी तथा अन्धकार लेकर पृथिवी के हृदय पर पड़ा है, न उसे घृणा है न अहंकार। ऊपर तो महाशून्य है और पैरों के नीचे भूमि है, बीच में तुम और मैं हूँ। देह है, भूख भी है, हृदय है और हम सुधा की तलाश कर रहे हैं। होना तो मृत्यु है, लेकिन हम अमरता की चाह करते हैं। दुःख है, किन्तु उससे बचत स्वरूप भ्रान्ति है सुख है किन्तु इसमें श्रान्ति आ जाती है, त्याग है तो समह भी है। जीवन क्या है आँधी में सागर की तरह आमरण लड़ना भिड़ना, मैं पूछता हूँ क्या तुम इसको निभा सकोगी? मेरे हाथों में हाथ रखकर क्या तुम मुझे समझ रही हो? क्या तुम मेरे मन प्राण मन की थाह पा रही हो। यह न तो मिट्टी ही है न शून्य ही है, पाप भी नहीं है पुण्य भी नहीं है, यह तो आत्मा से आत्मा को अनुभव करना है।"

"क्या तुम समझ रही हो कि इसमें कितना आनन्द है? कितना जन्म-मृत्यु, स्वर्ग-मर्त्य के द्वारा मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ। चित्र में, शिल्प में, गान में, मैं तुम्हारा ही ध्यान करता रहता हूँ। देखती नहीं हो हरेक पाषाण पर तुम्हारी रेखा है, तुम्हारे प्रणय का लेखा है, मर जड़ में तुम्हारी अमर महिमा है।'

'प्रेम का सुधापात्र लेकर आओ मेरी देवी, आओ मेरी दासी आओ मेरी सखी।"

२

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ, और उनका दान

उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ केवल बँगला साहित्य के एक व्यक्तित्व नहीं बल्कि एक युग हैं, अपनी प्रतिभा की विपुलता, विविधता तथा भास्वरता के द्वारा एक शताब्दी की दो तिहाई से वे बँगला साहित्य आकाश में जाज्वल्यमान हैं। उनकी प्रचंड दीप्ति के सामने पूर्ववर्ती साहित्यिक तथा कविगण टिमटिमाते-बुझते मालूम होते हैं, समसामयिकगणों की तो हालत जुगनुओं की तरह हो रही है, कभी मालूम होता है इस अनन्त आकाश में केवल रवीन्द्रनाथ ही हैं, कभी मालूम होता है साथ में वे भी हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र केवल बँगला के कवि ही नहीं, नाटककार, औपन्यासिक, दार्शनिक, चित्रकार, समालोचक, राष्ट्रीय लेखक, भाषातात्त्विक, वैयाकरणिक, अभिनेता सभी हैं। कलामय अभिव्यक्ति का शायद ही कोई विभाग बचा हो जिसमें उन्होंने सफलता के साथ हाथ न लगाया हो। उनकी प्रतिभा जिस दिशा में भी गई उसी दिशा में नवीन पथ काटकर फूलों की फसल खिलाकर रख दिया। कहने को कहा जाता है बिहारीलाल उनके काव्य गुरु थे। बात यह है इस अभागे देश में कान फूँकनेवाला न हो तो कोई सिद्ध नहीं होता। वे स्वयं भी इस बात को प्रतिभा के ही योग्य उदारता के साथ मानते हैं, किन्तु सच बात तो यह है कि एक छत्ते में कहाँ-कहाँ का शहद आकर एक सामञ्जस्यपूर्ण मिठास में परिणत हो गया है, यह मधुमक्खी स्वयं भी नहीं कह सकती।

वे केवल माइकेल की तरह मधुकर नहीं

फिर कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ का काम केवल दूसरे फूलों के शहद

लाकर सामञ्जस्यपूर्ण रूप से एक छत्ते में इकट्ठा कर देना ही नहीं था, बँगला काव्य साहित्य में यदि इस कार्य को किसी बड़े कवि ने किया है तो वे माइकेल हैं न कि रवीन्द्रनाथ। माइकेल ने लिखा है 'मैं ऐसा मधुचक्र (छत्ता) बनाऊंगा, जिस पर बंगवासी गौरव करेंगे।' उन्होंने वास्तव में ऐसा छत्ता बनाया स्मरण रहे इस काव्य मधुचक्र का निर्माण कोई मामूली काम न था, अंग्रेज कवि मिल्टन ने भी ऐसा ही किया था। *Paradise Lost* मिल्टन की मन से बड़ी तथा सुन्दर साहित्यिक कृति है। १७७० में प्रसिद्ध फ्रेंच समालोचक वाल्टेयर ने ही पहिले-पहल बतलाया कि *Giovanni Battista Andreini* के *Adamo* नामक एक पौराणिक नाटक को (१६३८-३९) देखकर ही मिल्टन ने *Paradise Lost* महाकाव्य की परिकल्पना की। विलियम लौडर (*William Lauder*) नामक एक लेखक ने तो खुल्लमखुल्ला *Inquiry into the origin of Paradise Lost* में मिल्टन को चोरी का दोषी बतलाकर सनसनी पैदा कर दी। एक डच कवि *Joost van den Vondel* की एक रचना *'Lucifer'* से भी इस मिल्टनीय महाकाव्य का सम्बन्ध बतलाया गया। यह तो केवल दो-एक बातें हुईं, इसी प्रकार इस महाकाव्य के सम्बन्ध में सैकड़ों बातें खोजनेवालों ने खोजीं। फिर भी अंग्रेजी साहित्य में मिल्टन एक महाकवि ही माने गये, क्योंकि उन्होंने अगर कहीं से कुछ लिया तो उसको इतना परिवर्तित (*transform*) कर दिया कि उसकी आत्मा तक बदल गई। यह साहित्य का एक बहुत ही टेढ़ा प्रश्न है कि दूसरों के भाव कहाँ तक अपनाये जा सकते हैं, इस पर स्वयं मिल्टन का ही मत सुन लिया जाय। उन्होंने लिखा है *Such kind of borrowing as this if it be not bettered by the borrower, among good authors is accounted Plagiary* + + + *It is not hard for any man who hath a Bible in his hands to borrow good words and holy sayings in abundance, but to*

काव्यों म जो बात दिखाई पड़ती है उसमें भारतीय तत्त्वचिन्ता की प्रेरणा का एक बड़ा भाग है। भारतीय भावसाधना की जो विशेषता रही है वह यह है कि उसने हमेशा समस्त जगत् को एक रस चेतना मे अपने अन्दर कर लिया है, वह हमेशा भाव को लेकर तृप्त रही है। रूप की अरूप साधना ही इस प्रतिभा की विशेषता थी। +++रूप में भाव को प्रत्यक्ष करना या रूप की भाषा में इसे प्रकाश करना कवि का काम हो सकता है यह इस भावुकता सर्वस्व जाति ने कभी सोचा भी नहीं था।"+

ऊपर की विश्लेषणपद्धति को यदि हम सच मानें तो काव्य की दो मुख्य धारायें होती हैं, एक रूप की भावसाधना, दूसरी भाव की रूप साधना। मैं समझता हूँ मोहितलाल ने ऐसा लिखकर कविता के साथ अन्याय किया है, क्योंकि भाव और रूप (*Idea and form*) के अलावा भी कवि का मन एक तीसरी चीज है जिसको हम भूल नहीं सकते। श्रेणीविभाग के खातं में हम यह भूल नहीं सकते कि प्रत्येक कवि का हृदय एक विभिन्न चीज है। हाँ हम चाहें तो कवि हृदयों को भी श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं, किन्तु फिर भी एक एक कवि स्वयं ही एक एक श्रेणी है। मैं पहिले ही लिख चुका हूँ कि 'कथा ओ काहिनी' 'बलाका' 'गीतांजलि' म हम रवीन्द्र की कवि-प्रतिभा का विभिन्न रूप देखते हैं, हाँ हम चाहे तो इन सब विशेष कवि प्रतिभा को एक श्रेणी म ले जा सकते है, किन्तु उस हालत म हमारी श्रेणी बहुत व्यापक श्रेणी होगी। शायद हम कवि कहकर के ही सन्तोष करना पड़े। रवीन्द्रनाथ की एक बहुत ही प्रसिद्ध कविता उर्वशी है, किन्तु इस कविता म कुछ भी रहस्य (*mysticism*) नहीं है। रवीन्द्रनाथ को अंग्रेजी 'गीतांजलि' पर नोबुल पुरस्कार मिला, इसी पर वे *mystic* कहलाये, किन्तु मैं इस बात को गंभीरता के साथ चुनौती देता हूँ की वह केवल एक रहस्यवादी कवि

+देखो आधुनिक बाँगला साहित्य पृ-१७१

हैं। रवीन्द्रनाथ के गीतों का अक्सर झुकाव इसी ओर है, किन्तु गीतों को छोड़ दिया जाय तो भी उनकी काव्य रचना विराट है। रवीन्द्रनाथ ने अपनी *mystic* रचनाओं को ही विश्वसाहित्य के दरबार में पहिले-पहल अंग्रेजी अनुवाद में पेश किया यह कोई आकस्मिक बात नहीं थी। मालूम होता है वे जानते थे कि यह एक नई धारा है जिसकी यूरोप के विद्वानों में कद्र होगी, इसलिये उन्होंने खास करके इसी चीज़ को विश्व के सामने पेश किया। किन्तु इससे यह नीचोड़ निकालना कि रवीन्द्रनाथ रहस्यवादी ही हैं गलत है। हाँ कविता-जगत में रहस्यवाद का जो रूप उन्होंने पेश किया है वह बिलकुल नवीन है और कला के जगत में वह उतना ही नया है जितना विज्ञान जगत में *Roman effect* या रेडियम है।

उनके रहस्यवाद का विश्लेषण

फिर रवीन्द्रनाथ जहाँ रहस्यवादी हैं वहाँ भी वे निरे रहस्यवादी इस अर्थ में नहीं हैं कि रूप से भाव में चले जाकर रह जाते हैं, इस माने में तो बिहारीलाल उनसे अधिक रहस्यवादी जान पड़ेंगे क्योंकि वे रूप से भाव में गये, और वहीं जाकर बैठ रहे। इसके विपरीत हम रवीन्द्रनाथ को 'भाव से रूप में तथा रूप से भाव में अनवरत आनागमन' करते देखते हैं। रवीन्द्रनाथ के रहस्यवाद की यही विशेषता मालूम देती है। रवीन्द्रनाथ की यह भाव साधना ऐसी है कि उसमें भारतीय अध्यात्मवाद को एक नवीन भोगवाद को समर्थन करने के लिये विवश किया गया है। रवीन्द्र-साहित्य में मनुष्य जीवन को एक महिमा प्राप्त हुई, जो प्राचीन साहित्य में कहीं नहीं थी। हमारे प्राचीन साहित्य में देवताओं के जरिये से मानव को देखने की प्रथा थी, स्वर्ग के देवताओं की नरलीला ही एक शब्द में सारे प्राचीन साहित्य का विषय है, किन्तु रवीन्द्रनाथ के साहित्य में हम मनुष्य के माध्यम से देवता को देखते हैं।

रवीन्द्र प्रतिभा को एक वाक्य में परिभाषा करने की चेष्टा करते हुए कवि मोहितलाल मजुमदार ने लिखा है "रवीन्द्रनाथ की कल्पना-शक्ति के मूल में अन्तर और बाहर, भाव और वस्तु, विचार और अनुभूति की एक सामजस्यमूलक गीतिप्रवणता है। इसी से उनके मन की मुक्ति है। इस मुक्ति के आनन्द में उनकी कल्पना सभी विरोध तथा सभी सस्कारों को पार कर एक ऐसी रसभूमि में अधिष्ठान करती है जहाँ जीवन का सब असामजस्य तथा वास्तविकता की सब विषमतायें कवि के प्राण में भावैक-परिणाम रागिणी में समाहित होती है।" मुझे फिर कहना पड़ा नेति। रवीन्द्रनाथ एक नाम होने पर भी इस नाम के अन्दर बीस विभिन्न कवि मौजूद हैं, रवीन्द्रनाथ ने अपनी काव्य-लक्ष्मी को जो 'जगतेर माझे कतो विचित्र तुमि हे, तुमि विचित्र रूपिणी' कहकर वन्दना की है, असल में यह अक्षरश सत्य है। सचमुच कवि रवीन्द्रनाथ विचित्र हैं, और पाठकों के प्राण में विचित्र रूपों से आते हैं। हम आगे उनके कुछ रूपों पर इस अध्याय में रोशनी डालेंगे।

भाषा पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव

बॅंगला भाषा को रवीन्द्र ने जो कुछ दिया है उसकी तुलना नहीं है। उनकी प्रतिभा के वरद स्पर्श से बॅंगला भाषा को जो सगीत और कमनीयता प्राप्त हुई वह अतुलनीय है। बाद को बॅंगला को शायद और रवीन्द्रनाथ के समान प्रतिभाशाली पैदा करने का गौरव प्राप्त हो, किन्तु बॅंगला भाषा को रवीन्द्रनाथ जिस प्रकार बदल गये, उस बदलने-बनाने का गौरव फिर किसी को नहीं मिलेगा। आज बगला में रवीन्द्रनाथ के पैदा होने का फल यह हुआ है कि इस भाषा में वैज्ञानिक भी लिखता है तो उसकी भाषा में कविता का पुट होता है।

रवीन्द्रनाथ बॅंगला में अकेले

भाषा की दृष्टि से रवीन्द्रनाथ का प्रभाव इस प्रकार सर्वव्यापी

होने पर भी, रवीन्द्र-धारा के बहुत ही कम सफल अनुयायी बँगला भाषा में पैदा हुए हैं। इसके बहुत से कारण बताये गये हैं, किन्तु मैं समझता हूँ इस का एक प्रधान कारण यह भी है कि रवीन्द्रनाथ ने स्वयं ही अपनी शैली की सारी सम्भावनाओं को अपनी सुदीर्घ साहित्यिक आयु में खतम कर डाला, दूसरा कारण यह है कि सारे रवीन्द्र-साहित्य का मूल रवीन्द्रनाथ के विपुल व्यक्तित्व में था, उस से चारों तरफ के समाज से इतना ही सम्बन्ध था जितना एक तार से झूलते हुए टब में रोपे हुए पेड़ का जमीन के साथ होता है। महर्षि देवेन्द्रनाथ के पुत्र रवीन्द्रनाथ में प्राच्य और पाश्चात्य की सब से अच्छी बातें थीं। रवीन्द्रनाथ लड़कपन में ही स्कूल से फरार रहे, किन्तु उन्होंने इङ्गलैण्ड में जाकर अंग्रेजी का अध्ययन किया देश में भारतीय साहित्य का अध्ययन किया। रवीन्द्रनाथ का व्यक्तित्व जरूर चारों तरफ के भारतीय समाज की ही उपज है, किन्तु यदि जन-साधारण की दृष्टि से देखा जाय तो उनसे उनका ऊपर बताये गये टब में के पौधे की तरह कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। हाँ एक बात में रवीन्द्रनाथ का सम्बन्ध जनता से बहुत करीब है, वह यह कि उनकी सांगीतिक आत्मा बिलकुल बँगाल की जनता की सांगीतिक आत्मा के साथ अभिन्न है। जर्मन कवि गेटे की तरह जनता के संगीत (*folk music*) से रवीन्द्रनाथ ने अनुप्रेरणा ली है, यह एक कारण है कि रवीन्द्रनाथ के काव्य में एक सार्वक आकर्षण है जिससे बचना मुश्किल है।

रवीन्द्रनाथ मध्यम श्रेणी के कवि

यह सब कुछ कह चुकने पर भी रवीन्द्रनाथ का गद्य तथा पद्य मध्यम श्रेणी का साहित्य है। कहा जाता है हमारे देश में केवल इसी श्रेणी का साहित्य हो सकता था, क्योंकि जिसको जनता कहते हैं उसका अस्तित्व इतना निम्नकोटी का है, करीब करीब पाशविक है कि वह साहित्य का विषय ही नहीं हो सकता। ऐसा जो लोग

कहते हैं वे रहते हैं जिन लोगों में न अभिसार है न विरह की तड़प, न *courtship* है, न प्रेमभिक्षा है, बस एक तरह से जबर्दस्ती कामपिपासा शान्त करना भर है उनमें प्रेम की कविता क्या हो सकती है ? यह एक बहुत ही टेढ़ा प्रश्न है, मौलिक कारणों पर बिना गये इन पर कुछ फैसला नहीं हो सकता, फिर भी साहित्यिक ढंग पर ही मैं एक बात कहना चाहता हूँ।

रवीन्द्र के ताजमहल की समालोचना

यह यह कि रवीन्द्र ने ताजमहल पर एक सुन्दर कविता लिखा है, इसमें इस ऐतिहासिक इमारत को एक विरही के प्रेम अर्घ्य के रूप में नमालूम कितने तरीकों से देखा, समझा, दिखलाया गया है। यदि कोई मान भी ले कि यह एक सम्राट का अपनी प्रियतमा के प्रति प्रेम अर्घ्य है, या उसके आँसूओं का प्रस्तरीभूत रूप है इत्यादि, फिर भी यह कैसे कहा जा सकता है कि एक गरीब स्त्री जो अपने स्वर्गगत पति की मिट्टी की कब्र पर जाकर रोज शाम को बिलानागा एक छोटा सा दीया जला आती है, और जाकर चार आँसू रो आती है, जिनसे सींचे जाकर एक गुच्छा दूब हरी बनी रहती है, उसका वह छोटा सा मिट्टी का दीया जो शायद उस स्त्री के पीठ फेरते ही बुझ जायगा, या वह घास का गुच्छा किस भाँति उस ताजमहल से निकृष्ट है ? क्या प्रेम के राज्य में इस सिक्के का दाम उस सिक्के से कम है, क्या प्रेम के राज्य में भी रुपयों से चीजें छोटी बड़ी होती हैं ? इस पर यह कहा जा सकता है कि मिट्टी का दीया कला की वस्तु नहीं, किन्तु ताजमहल है, किन्तु इससे साफ हो जायगा कि ताजमहल की भावुकतापूर्ण व्याख्या (जो रवीन्द्र की ताजमहल नामक कविता का विषय है) से ताजमहल के बड़प्पन का कोई सम्बन्ध नहीं है। इस व्याख्या का खोखलापन इस बात से और भी जाहिर हो जाता है कि मुमताज के अलावा

शाहजहाँ की और भी प्रियायें थीं। इस बात के मालूम होने के बाद ताजमहल प्रेम के मीनार (*monument of love*) के बनाय शायद गर्व का मीनार जँचे।

भाषा पर अमिट प्रभाव

ऊपर जो कुछ कहा गया उसमे शायद रवीन्द्रनाथ के साथ कुछ अन्याय हो इसलिये यह कह देना आवश्यक है कि दुनिया के ६० की सदी साहित्य के विरुद्ध यह समालोचना की जा सकती है। जमाना बदल रहा है, भविष्य के कवियों की वीणायें दूसरे सुर में बँजेंगी इसमें सन्देह नहीं, किन्तु बँगला साहित्य में कुछ भी हो, उसके आदर्शों में कितनी ही क्रान्ति हो, फिर भी भाषा के रूप में रवीन्द्रनाथ बँगला भाषा को जो सौन्दर्य नमनीयता और रूप दे गये उसके ऋण से उऋण कम से कम कोई बँगला भाषी नहीं हो सकता।

इस अध्याय में हम पहिले भी कह चुके हैं और फिर भी कहते हैं कि रवीन्द्रनाथ केवल एक रहस्यवादी कवि ही नहीं जैसा कि यूरोप में लोग कहते हैं और समझते हैं, और भारतवर्ष में उसकी देखादेखी लोग कहते रहे हैं। मैंने यह भी बतलाया इस गलती की उत्पत्ति अंग्रेजी गीताजलि से हुई। अंग्रेजी गीताजलि को पढ़कर लोगों ने कहा रवीन्द्रनाथ रहस्यवादी कवि हैं, लोग इस भूल को बारबार कहते गये तब यह एक सत्य ही हो गया। रवीन्द्रनाथ ने जो और हजारों कवितायें लिखी थीं जिनमे रहस्यवाद से कोई सम्बन्ध नहीं थे, जो केवल सौन्दर्य की एक-एक लडियाँ थीं, उनको लोग भूल गये, और रवीन्द्रनाथ एक रहस्यवादी कवि ही हो गये। मुझे आश्चर्य है कि रवीन्द्र-काव्य के बँगाली समालोचकों तक ने इस अजीब बात को कम लोगों ने आविष्कार किया और इस भूल के प्रवाह में बहते चले गये। अंग्रेजी में ही *Golden boat*

(सोनार तरी) नाम से रवीन्द्रनाथ की कविताओं का एक अनुवाद निकला इसमें शायद दो चार कविता हो जिनमें रहस्यवाद हो, किन्तु फिर भी रवीन्द्रनाथ रहस्यवादी ही रहे। दो एक उदाहरण लिया जाय, पाठक स्वयं ही अपनी राय कायम कर लें।

एक नक्षत्र की आत्महत्या

एक नक्षत्र आकाश से पागल की तरह समुद्र के काले पानी में कूद पड़ा। करोड़ों दूसरे नक्षत्रों ने इस आत्महत्या को भीत तथा चकित होकर देखा, देखा कि किस भाँति प्रकाश का एक परमाणु जो उनके साथ था बात की बात में अन्धकार में विलुप्त हो गया। वह जाकर समुद्र के चट्टानी गर्भ तक पहुँच गया जहाँ सैकड़ों नक्षत्र जिनका प्रकाश लुप्त हो चुका, बिखरे पड़े हुए थे।

आखिर इस आत्महत्या की मर्म कथा क्या थी? केवल मैं ही *जानता हूँ कि उसकी इस यौवन में कौन सी बात उसे खाये जारही थी।*

वह अनवरत हँसी की यन्त्रणा थी। एक जलता हुआ कोयले का टुकड़ा अपने कालेपन को छिपाने के लिये हँसता है। जितना ही वह हँसता है उतना ही वह जलता है। उसी तरह यह नक्षत्र हँसा और उज्वल हो गया। फिर जब जलने की यन्त्रणा उससे और बर्दाश्त नहीं हुई तो वह प्रकाश के जगत से समुद्र के ठंडे कालेपानी में कूद पड़ा।

करोड़ों उज्वल नक्षत्रों ने इस पतित नक्षत्र की ओर देखा, और वे घृणा से हँस पड़े।

उनलोगों ने कहा—'भला हमें क्या हानि है, आकाश तो उसी तरह उज्वल बना है।"

यदि कोई तुला हुआ ही हो तो इस कविता का भी रहस्यवादी अर्थ हो सकता है, किन्तु जैसी यह है वह बिना व्याख्या के ही हमारी समझ में आती है। इसकी किसी आध्यात्मिक या अतीन्द्रिय व्याख्या की जरूरत नहीं।

एक दूसरी कविता लीजिये—

प्रेतात्मा *The Ghost*

जब वृद्ध मरने लगा तो सारे देश ने रोया पीटा, सिर धुना और कहा प्रभो तुम्हारे बगैर हमारा काम कैसे चलेगा ?"

वृद्ध मन ही मन यह सोचकर परेशान हो रहा था कि यदि मैं मर गया तो इनको राहेरास्त पर कौन कायम रक्खेगा। हाय ?

देवताओं ने जाति की प्रार्थना सुन ली, और यह हुक्म दिया कि वृद्ध मरने पर प्रेत हो कर देश में रहेगा। मनुष्य तो मर जाते हैं किन्तु प्रेत अमर होते हैं ?

जाति की जान में जान आई।

बात यह है जब दृष्टि भविष्य पर निबद्ध होती है तभी परेशानी होती है, जब आँखें केवल भूतकाल पर रहती हैं तो परेशानियाँ खतम हो जाती हैं। फिर तो सारी जिम्मेदारियों को भूतकाल के सिर मढ़ दिया जाता है, और भूतकाल एक प्रेत के रूप में जीता है।

फिर भी कुछ लोगों ने हर बात पर भूतकाल से अनुप्रेरणा लेने के बजाय सोचना चाहा। प्रेत ने उनके कान पकड़ कर खींचे, बात यह है उसकी कंकालमय उँगलियों से कोई बच तो सकता ही नहीं था।

आँखों को तथा मन को बन्द कर सारा देश प्रेत के नेतृत्व में चलने लगा। बूढ़ों तथा विद्वानों ने कहा—इसी प्रकार चलना ही पृथिवी की पुरानी परिपाटी के अनुसार है। जीवन की उषा के समय दृष्टिशक्तिहीन सरीसृप *amoeba* भी इसी तरह चलते थे, पेड़ पौधे अब भी ऐसा करते हैं, इसी में उनकी बुद्धिमानी है।

प्रेताविष्ट जाति ने बड़े-बूढ़ों की यह बात जो सुनी तो उनमें आनन्द की एक लहर दौड़ गई कि उनके बाप दादे ऐसा ही करते थे, और आदिम पृथिवी के आदिम सरीसृप तक ऐसा ही करते थे।

देश के चारों ओर कारागार की तरह एक चहार दीवारी बन

गई, हाँ ये दीवारें अदृश्य थीं, इसलिये कोई भी जानता नहीं था कि इनको कैसे पार किया जाता है या इनमें कैसे भागा जा सकता है।

कैदी जाति प्रेत के नेतृत्व में गुलामी करती रही। कड़े परिश्रम का नतीजा यह हुआ कि विद्रोह का जोश जाता रहा। वह डरपोक हो गई फलस्वरूप इस प्रेत के राष्ट्र में चाहे स्वास्थ्य, अन्न, वस्त्र की कमी हो, किन्तु शांति की कमी नहीं रही।

ऐसे ही दिन बीतते गये। जाती सन्तोष में रही, मानो वह प्रेत के गाड़े हुए इस्पात के खूँटे में बँधा हुआ एक भेड़ का बच्चा हो।

किन्तु दिक्कतें पैदा होने लगीं। पृथिवी की किसी और जाति पर प्रेत का राज्य नहीं था, इसलिये दूसरे देशों में उन्नति का रथ जल्दी जल्दी आगे ही बढ़ता गया। ऐसी जातियाँ थीं जिन्होंने प्रेत की प्यास बुझाने के लिये एक भी बूँद रक्त नहीं दिया था, इसलिये उनकी शक्ति न क्षय होने के कारण वे बिलकुल भिन्न थे।

बूढ़ा ने भूतकाल की अपनी पोथियों तथा पत्राओं को देखा और एक स्वर से कहा—दोष न तो हमारा है, न तो हमारे शासक प्रेत का ही है, बल्कि समस्याओं का ही है। भला इन समस्याओं का क्या काम था कि ये होवें?

जाति ने जब बूढ़ों की इन बारीक बातों को सुना, तो उसे तसल्ली हुई।

किन्तु दोष चाहे किसी का हो, समस्याओं की वृद्धि को कौन रोक सकता था? कुछ दिनों के अन्दर समुद्र पर से टिड्डियों की तरह विदेशियों के झुंड आने लगे और फसलों से भरे खेतों को चाट डालने लगे। ये विदेशी व्यवहारिक बुद्धि के व्यक्ति थे, इनमें काम करने की शक्ति थी तथा दूरदर्शिता थी। प्रेताविष्ट होने के कारण जाति ने या तो इनकी अवज्ञा की थी, या इनसे दूर रही जिससे कि कहीं धर्मनाश न हो जाय। तब बूढ़ों ने फिर किताब खोली, और कहा—वे ही सौभाग्यवान हैं जो दुनिया के रगड़ों झगड़ों से दूर रहते हैं।

लोगों ने सुना, और उनने हृदय को थाम ली हुई।
किन्तु फिर भी वह प्रश्न जो लोगों को परेशान कर रहा था हल नहीं हुआ "फिर इन उजडे हुए खेतों से लगान कैसे लिया जाय।"
कब्रिस्तान से हहराती हुई एक हवा आई जैसे किसी प्रेत की हँसी हो, उसने कहा—अपनी इज्जत से लो, हृदय के रक्त से लो, अपनी आत्मा से लो।
जब प्रश्न आते हैं तो उनकी झडी सी लग जाती है।
इसलिये एक दूसरा प्रश्न उठा क्या प्रेत का राज्य चिर स्थायी है?
दाने और नालियाँ धक से रह गईं, कहाँ—हमने ऐसा प्रश्न कभी सात जनम में नहीं सुना था, भला यह भी कभी हो सकता है कि यह राज्य न रहे।
प्रेत के कर्मचारियों ने व्यंग की हँसी हँस कर कहा—कोशिश करके देखो कि कभी यह अदृश्य दीवारें टूट भी सकती हैं।
सच बात तो यह है कि भूतकाल न तो मरा ही था न जिन्दा था, बल्कि वह प्रेत रूप में था। कभी न तो इसने देश में कोई उथल-पुथल ही मचाया, और न वह देश को छोडकर चला ही गया।
एक या दो आदमी जो दिन में मुह इसलिये नहीं खोलते थे कि कहा राजद्रोह न हो जाय, उन्होंने रात को प्रेत से कहा—प्रभो क्या अभी तुम्हारा जाने का समय नहीं हुआ?
तब प्रेत हँसा और बोला—अरे सरल हम कैसे तुमे छोडकर जा सकते हैं जब तू हम से जाने को नहीं कहता।
उन लोगों ने कहा—प्रभो हम में से बहुतेरे तुम्हारा जाने के नाम से घबड़ाते हैं।
प्रेत फिर हसा।—"तुम्हारे भय के स्तम्भ पर ही मैं राज्य कर रहा हूँ"—उसने कहा

रटियाद पर आवाज

यदि कोई कहे कि इस कविता में कुछ भी रहस्यवाद है मैं

हम नहा मानेंगे, यह तो बूढे धर्मपीडित भारतवर्ष का एक चित्र है। इसका उद्देश्य स्पष्ट है। कवि के हृदय में भारतीयों के रूढिवाद से चोट लगी है, यह कविता उसी का स्फुरणमात्र है। फिर भी इस कविता में उद्देश्य ही सब कुछ नहीं है। जिस कलामय तरीके से यह कहा गया है वही उसको कविता बनाता है। हम इसी प्रकार की कवीन्द्र की सैकडों कविता दिखा सकते हैं जहाँ रहस्यवाद फटकता भी नहा।

काव्यमय कहानी

रवीन्द्रनाथ की बहुत सी कवितायें ऐसी हैं जिन्हें हम काव्यमय कहानी कह सकते हैं, इनमें किसी एक भाव को लेकर अत्यन्त कलामय चुभती हुई भाषा में एक कहानी कही गई है, पाठक के हृदय में एक टीस या आनन्द की लहर छोड जाती है। यह कहा जा सकता है कि इन कहानी मूलक कविताओं में कवि अपनी कला के शिखर पर नहा पहुँचे, किन्तु यह बात गलत है। आश्चर्य तो बल्कि इस बात से होती है कि दिनानुदैनिक छोटी घटनाओं को लेकर कवि कैसे कला के उत्तुंग सौध का निर्माण करते हैं।

मुक्ति

डाक्तारे जा बले बलुक नाको
राखो राखो खुले राखो
शिओरेर ओई जानला दुटो, गाये लागुक हावा।
ओषुध ? आमार फुरिये गेछे ओषुध खावा।
तितो कडा कतो ओषुध खेलाम ए जीवने,
दिने दिने क्षणे क्षणे।
बेंचे थाका, सेइ जेनो एक रोग,

— पूरी कविता न देकर हम केवल उसका अनुवाद देरहे हैं, पाठक इस कविता के छन्द को देखें

एतो एकम अनिराती, कोथाई सुप्रियोग

इत्यादि।

"डाक्टर चाहे जो कुछ भी कहें, रहने दो, सिरहाने के इन दो बँगलों को खुले रहने दो, जरा बदन में हवा लगने दो। क्या? क्या पीला मेरा खतम हो चुका है। जिन्दगी में मैंने कितनी ही दवा खाई, गेहूँ खाया, नमक कम खाया। वैद्य की दवा खाई, फुटकर दवा खाई, किन्तु क्या फायदा? जरा इधर से उधर हुआ नहीं कि फिर वही। यह अच्छा यह खराब, जो जो कुछ कहता था मन की बातों को मानती हुई, घूँघट काढ़कर मैंने तुम्हारे घर में बाईस साल काट दिये। तभी तो घर में और घर के बाहर सभी मुझे लक्ष्मी कहते हैं, अच्छी बतलाते हैं। इस घर में मैं नौ साल की एक लड़की आई थी, फिर इस परिवार की गली में होकर तमाम लोगों की इच्छा का बोझ उठाती हुई मैं अपने रास्ते के अन्त में पहुँची।

"सुख दुख की बात जरा सोचूँ इतना समय नहीं था। यह जीवन अच्छा है, या बुरा, या और कुछ, कुछ आगापीछा सोचूँ इतना मौका कब मिला। एकरस लगातार धुन में काम का चक्का घूमता रहा। बाईस वर्ष तक मैं एक ही चक्के में बँधी रही घूमती मैं थकी भी नहीं हुई। मुझे मालूम ही नहीं हुआ मैं क्या हूँ, मुझे यह भी मालूम नहीं हुआ कि यह पृथिवी भी कोई चीज है और उसका कोई अर्थ भी है मैंने यह कभी नहीं सुना कि मनुष्य की कोई वाणी है जो महाकाल की वीणा में झंकृत हो उठती है। मैं सिर्फ यही जानती थी कि पकाने के बाद खाना है, और खाने के बाद पकाना है, बाईस साल तक मैं एक ही चक्के में बँधी रही। अब मालूम होता है वह चक्का बन्द होने वाला है। तो होने न दो। अब दवा की क्या जरूरत?

बाईस वसन्त आये थे, गन्ध से विह्वल दक्षिण वायु ने जल

और स्थल मे एक उत्तेजना पैदा की थी। उसने चिल्ला कर कहा होगा—खोलो किवाड़े खोलो—किन्तु मैं भला कब जान पाती थी कि वह कब आई और कब सिर टकराकर चली गई। शायद वह धीरे से आकर मेरे मन को छू देती थी, शायद उससे घर के काम में कुछ गलती हो जाती थी हृदय म जैसे कोई पिछले जन्म की व्यथा छू जाती थी, अकारण ही जैसे किसी के पैर की आहट सुनकर विह्वल फागुन में मन उचट जाता था। तुम शाम को दफ्तर से लौटते थे, फिर कहीं मुहल्ले म शतरंज खेलने जाते थे, जाने दो उन बातों को। हाय आज यह मन क्षणिक व्याकुलता की बातें क्यों याद आ रही हैं?

आज पहिली बार बाईस वर्ष के बाद वसन्त इस घर मे आया है। जँगले से आकाश की ओर ताकते हुए मन आनन्द मे सिहर सिहर उठता है। आज मुझे मालूम हो रहा है कि मैं नारी हूं, महीयसी हूं, मेरे ही सुर म निद्राहीन चन्द्रमा ने अपनी ज्योत्स्ना रूपी वीणा को बाँधा है। यदि मैं न होती तो सान्ध्य नक्षत्र का निकलना व्यर्थ होता, तथा बाग मे फूलों का खिलना अर्थहीन होता।

बाईस वर्ष तक मैं तुम्हारे इस घर म कैदिन थी। फिर भी उसके लिये दुःख नहीं था, बात यह है सुधबुधहीनता मे दिन बीत जाते थे, यदि जाते तो और भी बीत जाते। जहाँ पर जो भी हमारे रिश्तेदार थे वे मुझे लक्ष्मी कहते थे, मानों इस जीवन में ऐसी कहलाना ही मेरा परम सार्थकता था। घर के कोने म रहना, और वहीं से लोगों की इस किस्म की तारीफें सुनना। आज न मालूम कब, मेरे बन्धन की वह रस्सी कट गई। आज वहाँ पर जहाँ जन्म तथा मृत्यु एक ही जहान मुहाने म जाकर मिल गई है, वहाँ मैं देखता हूँ कि रसोई खाने की दीवारें जरा से फेने की तरह विलीन हो गई हैं। इतने दिनों में मालूम होता है पहले

पहले विवाह की रात्रि निम्न आकाश में बज रही है। तुच्छ वर्षों साल आज घर के कोने के धूल में पड़े रहे। मृत्यु की सुहाग रात में आज जो मुझे बुला रहा है वह मेरे द्वार में प्रार्थी बनकर आया है, वह केवल मेरा प्रभु नहीं है, इसलिये वह मुझे अवहेला नहीं करेगा। मुझ में जो सुधारस है वह आज उसे माँग रहा है। महताराओं की सभा में वह निर्निमेष नेत्रों से वह मेरे मुँह की ओर टकटकी लगाये खड़ा है। यह भुवन मधुर है, हे मेरे अनन्त भिखारी मेरे मरण, व्यर्थ कर्म वर्षा से मुझे काल के पारावार में पार कर दो। +

पीड़िता नारी के साथ सहानुभूति

इस कविता में कुछ भी रहस्यवाद नहीं है। नारी विशेष कर भारतीय नारी की अत्यन्त मर्मभेदी कहानी इसमें है। नारी की दयनीय पराधीन दशा का इसमें चित्र है। सच है, इसमें नारी को आधुनिका की तरह विद्रोह की तलवार झनझनाते नहीं सुनते परन्तु उसे एक *fatalist* या भाग्यवादी की तरह अपने अन्त का आवाहन करती हुई पाते हैं, किन्तु क्या यही हमारे यहाँ की नारी का सच्चा चित्र नहीं है? उर्वशी तथा अन्य ऐसी कविताओं में कवीन्द्र ने नारी को कल्पना के रंगीन चश्मों से देखा है किन्तु बंगाली मध्यवित्त श्रेणी की नारी का जो चित्र 'मुक्ति' कविता में दिखलाया गया है वह वास्तविक है।

रवीन्द्रनाथ की उर्वशी

रवीन्द्र-समालोचना में उनकी उर्वशी की आलोचना एक मुख्य वस्तु है। कवि मोहितलाल ने इस कविता की विस्तृत आलोचना की है, हम पहिले इसको उद्धृत करेंगे फिर अपना वक्तव्य कहेंगे वे लिखते हैं।

+पहली बार यह कविता सबुजपत्र (वैशाख १३२५) में छपी

और स्थल मे एक उत्तेजना पैदा की थी। उसने चिल्ला कर कहा होगा—खोलो किवाड़े खोलो—किन्तु मैं भला कब जान पाती थी कि वह कब आई और कब सिर टकराकर चली गई। शायद वह धीरे से आकर मेरे मन को छू देती थी, शायद उससे घर के काम में कुछ गलती हो जाती थी हृदय में जैसे कोई पिछले जन्म की व्यथा छू जाती थी, अकारण ही जैसे किसी के पैर की आहट सुनकर विह्वल फागुन में मन उचट जाता था। तुम शाम को दफ्तर से लौटते थे, फिर कहीं मुहल्ले में शतरंज खेलने जाते थे, जाने दो उन बातों को। हाय आज यह सब क्षणिक व्याकुलता की बातें क्यों याद आ रही हैं?

आज पहिली बार बाइस वर्ष के बाद वसन्त इस घर में आया है। जँगले से आकाश की ओर ताकते हुए मन आनन्द से सिहर सिहर उठता है। आज मुझे मालूम हो रहा है कि मैं नारी हूं, महीयसी हूं, मेरे ही सुर में निद्रा हीन चन्द्रमा ने अपनी ज्योत्स्ना रूपी वीणा को बाँधा है। यदि मैं न होती तो सान्ध्य नक्षत्र का निकलना व्यर्थ होता, तथा बाग में फूलों का खिलना अर्थहीन होता।

बाईस वर्ष तक मैं तुम्हारे इस घर में बन्दिनी थी। फिर भी उसके लिये दुःख नहीं था, बात यह है मधुमहीनता में दिन बीत जाते थे, यदि जीती तो और भी बीत जाते। जहाँ पर जो भी हमारे रिश्तेदार थे वे मुझे लक्ष्मी कहते थे, मानो इस जीवन में ऐसी कहलाना ही मेरा परम सार्थकता था। घर के कोने में रहना, और वहीं से लोगों की इस किस्म की तारीफें सुनना। आज न मालूम कब, मेरे बन्धन की वह रस्सी कट गई। आज वहाँ पर जहाँ जन्म तथा मृत्यु एक कुहासा मुहाने में जाकर मिल गई है, वहाँ मैं देखती हूँ कि रसोई खाने की दीवारें जरा से फेने की तरह विलीन हो गई हैं। इतने दिनों में मालूम होता है पहले

पहल निनाद की वंशी निरव आकाश में बज रही है। तुच्छ गर्दिश माल आज घर के कोने के धूल में पड़े रहे। मृत्यु की सुहाग रात में आज जो मुझे बुला रहा है वह मेरे द्वार में प्रार्थी बनकर आया है, वह केवल मेरा प्रभु नहीं है, इसलिये वह मुझे अवहेला नहीं करेगा। मुझ में जो मधुरम है वह आज उसे माँग रहा है। ग्रहता-राओं की सभा में वह निर्निमेष नेत्रों से वह मेरे मुँह की ओर टक-टकी लगाये खड़ा है। यह भुवन मधुर है, हे मेरे अनन्त भिखारी मेरे मरण, स्वर्ण गर्दिश नपां में मुझे काल के पारावार में पार कर ले। +

पीड़िता नारी के साथ सहानुभूति

इस कविता में कुछ भी रहस्यवाद नहीं है। नारी विशेष कर भारतीय नारी की अत्यन्त मर्मभेदी कहानी इसमें है। नारी की दयनीय पराधीन दशा का इसमें चित्र है। सच है, इसमें नारी को आधुनिका की तरह विद्रोह की तलवार झनझनाते नहीं सुनते परन्तु इसमें एक *fatalist* या भाग्यवादी की तरह अपने अन्त का आवाहन करती हुई पाते हैं, किन्तु क्या यही हमारे यहाँ की नारी का सच्चा चित्र नहीं है? ऐसा तथा अन्य ऐसी कविताओं में रवीन्द्र ने नारी को कल्पना के रंगीन चश्मों से देखा है किन्तु बंगाली मध्यवित्त श्रेणी की नारी का जो चित्र 'मुक्ति' कविता में दिखलाया गया है वह वास्तविक है।

रवीन्द्रनाथ की उर्वशी

रवीन्द्र-समालोचना में उनकी उर्वशी का उल्लेख एक मुख्य वस्तु है। कवि मोहितलाल ने इस कविता की विस्तृत आलोचना की है, हम पहले इसको उद्धृत करेंगे फिर अपना वक्तव्य देंगे। वे लिखते हैं।

+पहली बार यह कविता [illegible] (वैशाख [illegible]) में छपी

वृन्तहीन पुष्पसम आपनाते आपनि विकशि'
कबे तुमि फुटिले उर्वशी ?

याने 'वृन्तहीन पुष्प की तरह अपने मे आप विकशित होकर उर्वशी तू कब खिली ?'

प्रश्न तो यह है रवीन्द्रनाथ की तरह कवि की कल्पना में ऐसी गड़बड़ी क्यों आ गई ? इसका एक मात्र उत्तर यह है कि यूरोपीय काव्य के अत्यधिक प्रभाव के कारण कवि अपने कवि धर्म को भूल गये हैं, इसलिये कल्पना में सामजस्य भी जाता रहा। यह उर्वशी न तो लक्ष्मी है, न वेद पुराण की उर्वशी ही है, न रवीन्द्रनाथ के अपने मन की ही कोई सृष्टि है। यह उर्वशी काम जननि *Aphrodite* का नया यूरोपीय संस्करण है—"*Mother of Love*" और "*Mother of Strife*" यूरोपीय काव्य में सौन्दर्य के साथ कामना तथा वेदना की अपूर्व उत्कंठा युक्त होकर साहित्य को जो मनुष्य जीवन की वास्तविकतम अनुभूति की प्रकाशकला में परिणत किया है, जिसके मर्मस्थल से *Our sweetest songs are those that tell of saddest thought* कवि की यह कातर उक्ति निकलती है, रवीन्द्रनाथ यहाँ पर सौन्दर्य के उसी आदर्श से खिंच गये हैं, किन्तु इस प्रकार खिंच जाने पर भी रूप की यह पार्थिवता तथा इन्द्रिय सर्वस्वता को उन्होने वहेल्लि से ग्रहण नहीं किया है। इसलिये उनकी उर्वशी 'नन्दनवासिनी' तथा सुरसभा की नर्तकी होने पर भी वे उसे

'स्वर्गेर उदयाचले मूर्तिमती तुमि हे उषसी'

याने 'स्वर्ग के उदयाचल में तुम मूर्तिमती उषसी हो यह कहकर ऋषि के ऋकमंत्र में उसे वन्दना करते नहीं हिचकते। फिर उसी के नृत्य के सम्बन्ध में कहते हैं—

छन्दे छन्दे नाचि उठे सिन्धुमाझे तरङ्गेर दल
शस्यशीर्ष शिहरिया काँपि उठे धरार अचल

याने 'उसके छन्द में समुद्र में लहरें नाच उठती हैं तथा फसल के सिर पर पृथिवी का आँचल काँप उठता है।' जो ऐसी कामना लेशहीन प्राकृतिक सौन्दर्य की महिमा में महिमामयी है, जिसके 'स्तनहार से दिगन्त के नक्षत्र गिर पड़ते हैं', उन्हीं के 'कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन यौवन चचल हो जाता है' और 'पुष्प के वक्ष में चित्त आत्महारा होता है और रक्त की धारा नाचने लगती है।' उर्वशी की कल्पना में यह परस्परविरोधी भाव ने कविता में रस के पूर्ण परिपक्व होने में बाधा पहुँचाई है। कामना की जो दिशा इसमें स्पष्ट हुई है उसको पूर्ण रूप से प्रकट नहीं किया गया, उर्वशी के बायें हाथ में कवि ने जो विषभाड दिया है उसमें अनन्त यौवना उर्वशी का वह कटाक्ष का आघात और

जगतेर अश्रुधारे धौत तव तनुर तनिमा,

त्रिलोकेर हृदि रक्ते आँका तवो चरण शोणिमा—

याने 'जगत की अश्रुधारा से तुम्हारे तनु की तनिमा धुली है और तुम्हारे पगचिन्ह त्रिलोक के हृदय के रक्त से अंकित हैं' तथा 'मुक्तवेणी विवसना' आदि कहने से कवि के मन में जिस रस की उत्पत्ति होती है वही इस कविता का प्रधान रस है। यह कामना और कामना की निष्फलता क्रन्दन उत्तेजना करने में ही यहाँ *sweetest song* की सार्थकता है। जिस अंग्रेजी कविता का प्रभाव इस कविता पर है मुझे ऐसा विश्वास है कि वह *Swinburne* की *Atlanta in Calydon* है उसके सुविख्यात *chorus* से कुछ उद्धृत करने पर ही पाठक समझ जायेंगे कि मैंने इस प्रभाव की बात को क्यों कहा है, और यह भी समझेंगे कि स्विनबर्न की इस कविता में रस कितना गाढ़ और उज्ज्वल हो गया है, इसके विपरीत रवीन्द्रनाथ की कल्पना (चूँकि वह रक्तमास का विक्षोभ तथा काम की प्रधानता स्वीकार नहीं करता) इन्द्रियों को अतीन्द्रिय भावविलास में विलीन ग्रस्त हो कर रह गई है।

स्विनबर्न की *Aphrodite*

स्विनबर्न कहते हैं

An evil blossom was born
Of sea foam and the frothing of blood
Blood red and bitter of fruit
And the seed of it laughter and tears
And the leaves of it madness and scorn
A bitter flower from the blood
Sprung of the sea without root
Sprung without graft from the years
The weft of the world was untorn
That is woven on the day on night
The hair of the hours was not white
Nor the raiment of time overworn
When a wonder a world s delight
A perilous goddess was born,
And the waves of the sea as she came
Clove and the foam at her feet
Fawning rejoiced to bring forth
A fleshy blossom a flame
Filling the heavens with heat
To the cold white ends of the north

++ ++ ++

What hadst thou to do being born,
Mother when winds were at ease,
As a flower of the springtime of corn
A flower of the foam of the seas ?

For bitter thou wast from thy birth
Aphrodite, a mother of strife,
For before thee some rest was on earth
A little respite from tears
Earth had no thorn, and desire
No sting, neither death any dart,
What hadst to do amongst these
Thou clothed with a burning fire,
Thou, girt with sorrow of heart,
Thou, sprung of the seed of the seas
As an ear from a seed of corn
As a brand plucked forth of a pyre,
As a ray shed forth of the morn
For division of soul and disease
For a dart and a sting and a thorn ?
What ailed thee then to be born ?
— — + *But the*
Who shall discern and declare
In the uttermost ends of the seas
The light of thine eyelids and hair,
The light of thy bosom as fire
Between the wheel of the sun
And the flying flames of the air ?
Wilt thou turn thee not yet nor have pity,
But abide with despair and desire
And the crying of armies undone
Lamentation of one with another
And breaking of city with city,

The dividing of friend against friend
The severing of brother and brother
Wilt thou utterly bring to an end
Have mercy, mother

इस कविता को मैंने संक्षेप में उद्धृत किया। रवीन्द्रनाथ की 'उर्वशी' पर इस कविता का प्रभाव है। यह प्रश्न इस क्षेत्र में अप्रासंगिक है। रवीन्द्रनाथ ने अभी हाल ही में अनुकरण और स्वीयकरण (अपना कर लेने) में जो भेद बताया है वह इस समय याद दिलाना चाहता हूँ। रवीन्द्रनाथ की कल्पना में स्विनबर्न की *Aphrodite* ने बहुत कुछ आवेग पहुँचाया है इसका यथेष्ट प्रमाण उद्धृत अंशों से मिलेगा। स्विनबर्न की एफ्रोडाइट का सौन्दर्य जैसे

An evil blossom + + + blood red and bitter of fruit +
And the seed of it laughter and tears

उसी तरह रवीन्द्रनाथ की उर्वशी
+ + + उठेछिलो मथिवो सागरे,
डान हाते सुधापात्र, विषभाड लये बाम करे +
स्विनबर्न की *Aphrodite* जैसे

Spring of the sea without root
Sprung without graft from the years

उसी तरह रवीन्द्र उर्वशी को प्रश्न कर रहे हैं

वृन्तहीन पुष्पसम आपनाते आपनि विकशि—
कबे तुमि फुटिले उर्वशी ? (१)

+सागर को मथित कर दाहिने हाथ में सुधापात्र और बायें हाथ में विषभाड लेकर उठी थी।

(१) हे उर्वशी तू वृन्तहीन पुष्प की तरह अपने में आप विकसित होकर कब उठी?

हाँ स्विनबर्न की *Aphrodite* उर्वशी की तरह नर्तकी नहीं है, फिर भी उर्वशी के नृत्य के छन्द में जैसे समुद्र की लहरें तथा शस्य शीर्ष में धरा का अंचल तरंगित हो उठता है, किन्तु एफ्रोडाइट के सौन्दर्य की व्याप्ति तथा विकास इसी तरह का है

In the uttermost ends of the sea
The lights of thine eyelids and hair

यहाँ एफ्रोडाइट से उर्वशी में कवि की कल्पना अधिक स्फूर्ति पा सकी, किन्तु

The lights of thy bosom as fire
Between the wheel of the sun
And the flying flames of the air?

इन पंक्तियों का *paraphrase*

तव स्तनहार हते दिगन्तर खसि पड़े तारा (२)

ने रवीन्द्र की उर्वशी के सौन्दर्य को स्निग्ध कर दिया है, *flying flames of the air* से 'तारे छिटक पड़ते हैं', सैकड़ों गुना *suggestive* हुआ है, फिर

Wilt thou turn thee not yet nor have pity
But abide with despair and desire

और

जगतेर अश्रुधारे धौत तव तनुर तनिमा
त्रिलोकेर हृदि-रक्ते आँका तव चरण-शोणिमा

आदि की विचार-शैली विभिन्न होने पर भी, या कहीं कहीं

And the waves of the sea as she came

---

(२) तेरे स्तनहार से दिगन्त के नक्षत्र छिटक पड़ते हैं।

Close and the foam at her feet
Fanning
तरङ्गित महासिन्धु मन्त्रशान्त भुजङ्गेर मतो
पड़ेछिलो पदप्रान्त, उच्छ्वसित फरणा लक्ष शत
करि अवनत—+

एक हद अनुवाद ना होने पर भी, दोनों में जो प्रभेद है उससे उर्वशी कविता दुर्बल हो गई है, कल्पना की जहाँ समता है वहीं पाठक मुग्ध होता है। दोनों के सौन्दर्य का मूल कारण कामना है। इस कामना को ही रवीन्द्रनाथ ने एक स्निग्ध अतीन्द्रियता से मंडित करने की चेष्टा की, किन्तु वे असफल रहे, इसके विपरीत केन्द्रीय भाव ही दो हिस्सों में बट जाने के कारण रसाभास हुआ है। सौन्दर्य कल्पना की वह दिशा (जिसने मनुष्य की कामना को प्रदीप्त कर साहित्य के एक बड़े भाग को उज्ज्वल किया है) इसमें प्रकट हुई है।

मोहितलाल की उर्वशी समालोचना को मैं उद्धृत कर चुका, किन्तु और भी थोड़ा उद्धृत करने की आवश्यकता है जिससे कि उनकी पूरी बात पाठक के सामने आ जाय। वे कहते हैं

रवीन्द्रनाथ में सौन्दर्य का एक दूसरा आदर्श

रवीन्द्रनाथ के काव्य में ही सौन्दर्य का एक दूसरा आदर्श प्रकट है, मैं संक्षेप में उसका उल्लेख करूँगा, आलोचना जिसमें बढ़ न जाय मैं उसको उद्धृत नहीं करूँगा, केवल दिशा भर बता दूँगा। 'वलाका' की 'दुइ नारी' शीर्षक कविता में रवीन्द्रनाथ ने उर्वशी और लक्ष्मी दोनों के रूप का वर्णन किया है, फिर लक्ष्मी के सौन्दर्य को ही तरजीह देकर उसी पर मुग्ध हुए हैं। 'चित्राङ्गदा"

+तरङ्गित महासिन्धु मन्त्रशान्त भुजङ्ग की तरह पदप्रान्त में गिर पड़ा था, उसने अपनी लाखों उच्छ्वसित फणाओं को अवनत कर लिया था।

काव्य में चित्राङ्गदा का स्वर्गीय रूप-लावण्य देखकर अर्जुन के चित्त में जो चमत्कार पैदा हुआ था वह यों है

केनो जानि अकस्मात
तोमारे हेरिया बुझिते पेरेछि आमि
कि आनन्दकिरणेते प्रथम प्रत्यूषे
अन्धकार महार्णवे सृष्टि-शतदल
दिग्दिके उठेछिलो उन्मेषितो हये
एक मुहूर्तेर माझे +++
+ + + + चारिदिक हते
देवेर अङ्गुलि जेनो देखाये दितेछे
मोरे, ओई तव अलोक आलोक माझे
कीर्तिक्लिष्ट जीवनेर पूर्ण निर्वापण।
या अन्यत्र

भाविलाम

कत युद्ध, कत हिंसा, कत आड़म्बर
पुरुषेर पौरुष-गौरव, वीरत्वेर
नित्य कीर्तितृषा, शान्त हये लुटाइया
पड़े भूमे, ओई पूर्ण सौन्दर्येर काछे
पशुराज सिंह यथा सिंहवाहिनीर
भुवन-वाञ्छित अरुण चरणतले।

याने "नमालूम क्यों तुमको देखकर अकस्मात मैंने जाना है कि प्रथम प्रभात में एक किरण से अन्धकार महासमुद्र में सृष्टि का शतदल दिशाओं में एक मुहूर्त में उन्मेषित होकर उठा था +++ चारों तरफ से देवता उँगलियों से मानो मुझे दिखला दिया कि

तुम्हारे इस अलौकिक आलोक मे कीर्तिक्लिष्ट जीवन का पूर्ण निर्वापण है। +++ मैंने सोचा तुम्हारे उस पूर्ण सौन्दर्य के सामने कितने युद्ध, कितनी हिंसायें, पुरुष का पौरुष-गौरव, वीरता की नित नई कीर्ति की प्यास शान्त होकर चरणों मे लोटने लगती है, जैसे पशुराज सिंह सिंह वाहिनी दुर्गा के भुवन-वाञ्छित अरुण चरणों में लोटता है।"

मोहितलाल की राय मे रवीन्द्रनाथ मे सौन्दर्य का यह दूसरा आदर्श है, उनके मत मे यहाँ केवल कामना नहीं, पुरुष का पौरुष स्तम्भित हो जाता है, जैसे जीवन्मुक्ति होती है वे कहते हैं "यहाँ किसी कर्म प्रवृत्ति हृदय वृत्ति का अवसर नहीं है, हम जिसको जीवन कहते हैं वह द्वंद्व और विक्षोभ शान्त हो जाता है, क्षुद्र चेतना जैसे एक वृहत्तर चेतना मे लुप्त हो जाती है, इसी का नाम जीवन का पूर्ण निर्वापण है। इस सौन्दर्यप्रीति का नाम ही *asthet cism artistic monasticism*—है

दोनों आदर्श एक हैं।

मैं मोहितलाल के अपने वाक्यों तथा उदाहरणों से ही दिखला ऊँगा कि उनकी अँग्रेजी का यममर्मज्ञता ने उनको पथभ्रष्ट कर दिया है और वे उर्वशी को ठीक नहीं समझ पाये। मैं पहिले इस बात पर आऊँगा कि क्या रवीन्द्रनाथ की उर्वशी और चित्राङ्गदा मे कोई आदर्शगत भेद है, या उनमें उतना ही प्रभेद है जितना दो नारियों में आदर्शगत या मौलिक भेद न होते हुए भी होना चाहिये। चित्राङ्गदा के सौन्दर्य में मोहितलाल जीवन का पूर्ण निर्वापण देखते हैं, किन्तु मैं तो केवल एक प्रकार के जीवन (जिसमें वीरत्व की नित नई कीर्ति की प्यास वगैरह थी) उसीका निर्वापण देखता हूँ, और एक दूसरे प्रकार के शायद हृदय के अधिकतर तड़पनयुक्त जीवन का सूत्रपात देखता हूँ। यदि किसी नारी के रूप को देखकर अर्जुन की तरह पुरुषसिंह अपने पौरुष को भूल जाता है, अपने

जीवन के अब तक के तरीकों पर लात मारकर उस सुन्दरी रूपसी के चरणों में लोटने को उद्यत हो जाता है, तो इसे जीवन का पूर्ण निर्गपण कैसे कहेंगे। मैं तो इसमें कामनामय सौन्दर्य को ही देखता हूँ। मोहितलाल जिसको *Æsthetiscism* या *Artistic monasticism* कहकर चीख उठते हैं मैं तो उसमें अत्यन्त कामनामय सौन्दर्यानुभूति ही देखता हूँ किन्तु इसमें मैं मोहितलाल को दोष नहीं देता, कामना लेशहीन सौन्दर्यानुभूति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से असंभव चीज है। इसलिये यदि 'उर्वशी' कविता में रवीन्द्रनाथ कवि कल्पना में विचलित हो गये हैं, तो यह प्रकट करता है कि दार्शनिकता के आवेश में कवि अपने कवि धर्म को भूलते भूलते नहीं भूलते हैं। यदि मोहितलाल की बात मान ली जाय तो यही प्रमाणित होगा कि सौभाग्य से कविवर अपने अन्तर की पुकार पर ही चलते हैं, सौन्दर्यविज्ञान की पुस्तकों पर नहीं। मोहितलाल ने स्वय ही आगे चलकर माना है "इसमें (*æsthetiscism*) वास्तविक जीवन और जगत के प्रति उदासीनता होती है, अतएव इसमें सृष्टि का पूर्ण सत्य नहीं है, यह भी सूक्ष्मतर इन्द्रियविलास या अतीन्द्रिय भाव विलास है।"

दूसरा आदर्श केवल काल्पनिक

इससे स्पष्ट है कि कविता का यह दूसरा आदर्श अवास्तविक है, इसमें जीवन का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह अच्छा ही हुआ कि कविता के इस प्राणहीन संगमरमर निर्मित आदर्श को न अपना कर रवीन्द्रनाथ ने तड़पनयुक्त सजीव आदर्श को अपनाया। इसी आदर्श की प्राणरसपुष्टता के कारण ही उर्वशी कविता नारी पर एक श्रेष्ठ कविता है। मोहितलाल ने यह जो कहा है "माता नहीं हो कन्या नहीं हो वधू नहीं हो" के साथ "तुम्हारे कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन यौवन चंचल हो जाता है" इसका सामञ्जस्य नहीं है मेरी राय में यह बात गलत है। उर्वशी कोई गणित का [illegible]

• है, वह एक जीती जागती तड़पती फड़कती चीज है, कवि-कल्पना में कभी ऐसी कभी वैसी मालूम होगी इसमें आश्चर्य क्या है। जिसको हम प्यार करते हैं उस नारी के सम्बन्ध में ऐसे भाव का आनाजाना आश्चर्यजनक नहीं है। कभी तो उसके कटाक्ष पर सारी पृथिवी घूमती हुई मालूम होती है, कभी वह इतने दूर की वस्तु मालूम होती है कि वह न तो माता न कन्या न वधू मालूम होती है। क्या यह बात कोई ऐसी अनहोनी है कि समालोचक मोहितलाल को मालूम नहीं हुई।

सौन्दर्य निकष की कसौटी पर उर्वशी

मोहितलाल ने कीट्स की एक पंक्ति *A thing of beauty is a joy for ever* लेकर यह दिखाया है कि "दाहिना हाथ में सुधापात्र तथा बायें हाथ मे विषभाड लेकर इसमें विषभाड का उल्लेख विशुद्ध सौन्दर्यानुभूति में बाधक है। फिर एक बार मैं विद्वान समालोचक से सहमत नहीं हो सकता। मैं तो समझता हूं इस विषभाड की मौजूदगी ही सुधापात्र को और भी सुधामय बना देती है, यही प्रकृति का नियम है। मृत्यु के कारण ही जीवन मधुर है, विरह के भय के कारण ही मिलन प्रिय है, इत्यादि इसके कितने उदाहरण है, फिर यदि स्वर्ग रूपसी चिरयौवना उर्वशी के एक हाथ ने सुधापात्र को मधुरतर बनाने के लिये कवि ने दूसरे हाथ में विषभाड की कल्पना की है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? फिर यह केवल कल्पना ही नहीं है, क्या रूप और कामना की देवी यह चाहे जिसके लिये जो नाम रखती हो वह एक हाथ मे अपने प्रेमिक के लिये 'अमी' और दूसरे में 'हलाहल' नहा रखती? एक हिन्दी कवि जो शायद रविनवर्न के परदादा के परदादा के परदादा से भी आगे थे प्रिया के नयनों को अमृत, हलाहल और मद से भरे देखे हैं। मुझे डर है विद्वान् समालोचक कीट्स की बात *A thing of beauty is joy for ever* को ठीक ठीक नहीं समझे, क्या रवीन्द्रनाथ की

उर्वशी कहीं पर *joy for ever* नहीं है *joy* या आनन्द एक *subjective* चीज है, इसलिये प्रेमिक तथा पुजारीकी आँखों में क्या आनन्द होगा, यह साधारण नियम से बताया नहीं जा सकता, सिसक-सिसक कर मरने में ही यदि किसी को आनन्द मिले तो ?

उर्वशी पर एक और बात, और हम खतम कर चुके। मोहित-लाल ने कहा है कवि ने जिसको अन्धकार सागर के नीचे प्रवाल के पलँग पर अकलंक हास्यमुख में सोते देखा है तथा यौवन में जिसके कटाक्ष से त्रिभुवन को यौवन चचल होते देखा है उसी को नित्यपूर्ण और स्वयप्रकाश सौन्दर्य के प्रतीक रूप में कल्पना करते हुए जो प्रश्न करते हैं "वृन्तहीन पुष्प की तरह अपने में आप विकसित होकर हे उर्वशी तू कब खिली ?" इसमें कल्पना में गड-बडी आ गई है। मैं नम्रता पूर्वक कहना चाहता हूँ फिर समालोचक-गलत समझे ? या यह कहें नित्यपूर्ण और स्वयप्रकाश शब्द समा-लोचक के हैं, फिर कवि जो प्रश्न पूछते हैं कब खिली न कि कब पैदा हुई। कवि ने उसको कली की अवस्था में देखा, फिर खिली अवस्था में देखा किन्तु प्रश्न यह है कब यह खिली। मैं समझता हूँ यह एक प्रासगिक प्रश्न है। सृष्टि में इसी रहस्य को समझाने के लिये वैज्ञानिकों ने *emergent evolution* आदि कितने ही अर्ध वैज्ञानिक सिद्धान्त बनाये हैं।

अब रहा यह कि स्विनबर्न की कविता से रवीन्द्रनाथ को कहाँ तक मसाला मिला, यह हमने पाठकों के सम्मुख रख दिया, किन्तु जो कुछ भी पेश किया उसी से मालूम होता है कुछ नहीं लिया। विशेष कर जहाँ बतलाया गया है कि

And the waves of the sea as she came

इत्यादि

का एकदम अनुवाद है, वहाँ तो हमे मालूम होता है

। ... मन्त्रशान्त सुनद्धेर मतो

+++ फणा नत रात

करि अवनत,

से रवीन्द्र ने कथित अनुवाद को इतना सुन्दर बना दिया है कि मूल बड़ा दुर्बल मालूम देता है।

रवीन्द्रनाथ पर एक सरसरी निगाह

अब हम सरसरी तौर पर रवीन्द्रनाथ पर दो चार बातें और कहेंगे। रवीन्द्रनाथ को लोग चाहे रहस्यवादी समझें और कहें, किन्तु उन्होंने साफ साफ बारबार कहा है।

सबार उपरे मानुष सत्य ताहार उपरे नाई

"सब से बढ़कर सत्य मनुष्य है, उसके ऊपर कुछ नहीं है।" बारबार रवीन्द्रीय वीणा से यह वाणी झंकृत हुई है। रवीन्द्रनाथ की एक प्रसिद्ध कविता है "स्वर्ग से बिदाई", इसमें मनुष्य ने स्वर्ग से कहा है—

> थाको स्वर्ग हास्यमुखे, करो सुधापान
> देवगण ? स्वर्ग तोमादेरि सुखस्थान
> मोरा परवासी। मर्त्यभूमि स्वर्ग नहे
> से जे मातृभूमि—ताइ तार चक्षे बहे
> अश्रुजलधारा ..

यानि "हे स्वर्ग तुम हास्यमुख से रहो, हे देवताओं सुधापान करो। स्वर्ग तुम लोगों के सुख का स्थान है, हम तो यहाँ प्रवासी-मात्र हैं। मर्त्यभूमि स्वर्ग तो नहीं है किन्तु मातृभूमि है, तभी तो उसकी आँखों में अश्रुजल की धारा बहती है।" इस स्वर्गविमुखता के होते हुए भी रवीन्द्रनाथ का मनुष्य यहाँ लौटकर एक स्वर्गीय स्वप्न में ही विभोर रहता है, जीवन की कठिन वास्तविकताओं से उसका जैसे कोई सम्बन्ध नहीं। वह यहाँ भी कामना करता है "यदि धरातल में

दानतम घर में मेरी प्रेयसी जन्म ले, किसी नदी के किनारे गाँव मे एक पीपल के पेड के नीचे, वह बालिका फिर अपने वक्ष मे मेरे लिये सुधा का भंडार संचित कर रक्खेगी" इसी तरह की और बातें। इसीसे रवीन्द्र-साहित्य आधुनिक होने पर भी सच्चे मानों मे पूर्ण क्रान्तिकारी नहीं है। फिर भी रवीन्द्रनाथ अछूतों के दुःख मे विक्षुब्ध मालूम होते हैं, वे जाति से कहते हैं इनको दूर करो "नहीं तो अपमान में उनको सब के समान होना पडेगा, उन्हें दूर रखकर तुमने मनुष्य के हृदय के देवता की अवहेलना की है।" "लकडहारा जहाँ लकडी चीरता है, किसान जहाँ हल जोतता है" यहो पर रवीन्द्रनाथ के भगवान भी हैं, किन्तु इतनी सहानुभूति या विद्रोह होने पर भी कवीन्द्र कभी भी इन दुखों की तह में जो एकदेशीय तथा वर्गीय समाजव्यवस्था है उस तक नहीं पहुँच पाते।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ के सम्पादन मे "बंगला-काव्य परिचय" नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, इसमे कवीन्द्र ने अपनी १७ कवितायें दी हैं, किन्तु मेरी राय मे इसमें से एक भी कविता रहस्यवादी नहीं है इसी से यह निष्कर्ष तो नहीं निकलना चाहिये कि वे अपनी उन कविताओं को जो रहस्यवादी (*mystic*) हैं, उनमे वे अपनी दूसरी कविताओं को अच्छी नहीं समझते, किन्तु इससे यह अर्थ तो निकाला ही जा सकता है कि अपनी कविताओं में कवित दृष्टि से वे अपनी रहस्यवादी कविताओं को विशेष महत्त्व नहीं देने के लिये तैयार हैं। सौभाग्य से बँगला साहित्य मे गीतांजलि ही रवीन्द्रनाथ का श्रेष्ठ दान नहीं है। मोहितलाल ने लिखा है और मैं इससे सहमत हूँ कि रवीन्द्रनाथ की विशेषता यह है कि उन्होंने प्राच्य भाव-साधना और प्रतीच्य रूप-साधना का सुन्दर समन्वय किया है। इसी कारण प्राच्य के रहस्यवाद ने उनके हाथों मे एक नया ही रूप धारण किया है। एक विद्वान समालोचक का तो यह कहना है कि रहस्यवादी कवितायें (*mystic poems*) रवीन्द्रनाथ का

प्रतिभा का श्रेष्ठ दान नहीं है।

कुछ भी हो यूरोप में इन रहस्यवादी कविताओं की ही धूम रही, रवीन्द्र प्रतिभा में चूँकि प्राच्य भावपरायणता का प्रतीच्य रूपव्याकुलता का समन्वय है इसलिये दोनों प्रकार के पाठकों को उनकी कविता में अभिनवत्व मिलता है।

एक जीवन में कई जन्म और कई जीवन

मैं पहिले ही कह चुका कि रवीन्द्रनाथ को किसी वाद के विशेषण में लाकर यह कहने की चेष्टा करना कि इसी वाद के वादी हैं, गलत होगा। पाश्चात्य में टमास मान की तरह व्यक्ति हैं जो कई बार कायापलट कर दूसरे ही कलाकार हो चुके हैं, उन्होंने जैसे एक ही जीवन में कई जन्म पाये, किन्तु रवीन्द्रनाथ इसके विपरीत एक दूसरे ही तरह के जीव हैं। वे एक साथ कई जीवन जीते हैं। यदि सन और तारीख से देखा जाय तो मालूम इस बात की सत्यता मालूम होगा। एक ही समय में वे कई तरह कविता लिखते हैं। कहीं तो वे बिलकुल भावहवादी हैं तो कहीं रहस्यवादी, कहीं भावुक हैं तो कहीं विचार का नूपुर छमछम बज रहा है। यह एक न्यारी ही दुनिया है।

हिन्दी जगत में रवीन्द्रनाथ को लोग मुख्यतः अंग्रेजी के जरिये से जानते हैं, इसलिये वे हिन्दी जगत में केवल रहस्यवादी समझे जाते हैं। बात यह है वे अंग्रेजी गीतांजलि को ही पढ़ते हैं जिसके कारण उन्हें नोबुल पुरस्कार मिला, दूसरी बहुत सी पुस्तकों को व पढ़ने का कष्ट नहीं उठाते। यदि वे गीतांजलि के अतिरिक्त "सोनार तरी" "बलाका" आदि पढ़ें तो उनकी यह धारणा जाती रहे।

आधुनिकों के आधुनिक किन्तु

अन्त में हम रवीन्द्रनाथ की 'एबार फिराओ मोरे' (अब मुझे

ोटाओ) कविता का अनुवाद देकर इस दौर को समाप्त करते हैं। यह कविता एक नई ही वाणी को लेकर शखनाद कर रही है, जिसमें वे कहीं कहीं आधुनिकों के अधुनिक मालूम होते हैं। अर्ध शताब्दी तक साहित्यिक क्षितिज में बराबर रहने पर भी आज भी रवीन्द्रनाथ अपनी नवीनता को कायम रख सके हैं इसका कारण यह है कि उनका ग्रहणशील (*receptise*) मन हमेशा नये युग को अपना लेता है। सब से मुश्किल होता है भाषारीति में परिवर्तन, किन्तु वे इसमें भी पिछड़े नहीं रहे। उन्होंने बुढ़ापे में बँगला की साधु भाषा को छोड़कर आम बोलचाल की भाषा अपनाई, केवल यही नहीं कि उन्होंने उसको इस्तेमाल किया बल्कि उन्होंने उसका पक्ष लेकर बड़े जोरों की वकालत की। कई समालोचक को इस बात पर बड़ा आश्चर्य है क्योंकि उनकी पहिले की सारी रचना साधु भाषा में है, और "रवीन्द्रनाथ का रवीन्द्रनाथत्व उसी भाषा में है।" पहिले ही मैं कह चुका कि रवीन्द्रनाथ मुख्यतः भद्रलोक श्रेणी के कवि हैं, सम्भव है जब आम-लोगों का साहित्य हो तो उसमें रवीन्द्रनाथ का स्थान यह न रहे, किन्तु बँगला भाषा को जो सौष्ठव तथा कमनीयता उन्होंने दी है वह रवीन्द्र विरोधी से रवीन्द्रविरोधी कवि तथा साहित्यिक की अनुकरणीय होगी। बँगला भाषा का कोई भी लेखक इस ऋण से उऋण नहीं हो सकता।

एबार फिराओ मोरे

इस संसार में जब सभी हर समय सैकड़ों काम में लगे हुए हैं, उस समय हे कवि तूने दुपहर की धूप में एक पेड़ के नीचे बैठकर दूर जंगल की गंध बहाकर लाने-वाली हवा में केवल बाँसुरी ही बजाई। अरे आज तू उठ, कहीं आग लगी है। सुन, किसी का शंख विश्वगामी को जगाने के लिये बज रहा है। कहीं से रोने की आवाज से सारा आकाश गूँज उठा है। किसी अन्धकार कारागार में बंधन से जर्जर कोई अनाथिनी सहायता माँग रही है। दुर्बल की

छाती पर चढकर मोटाताजा अपमान लाखा मुँह मे रक्त पी रहा है स्वार्थ से उद्यत अविचार वेदना का परिहास कर रहा है।

वे जो लाखों मौन होकर सिर नीचा किये हुए खड़े हैं उनके कुम्हलाये हुए चेहरे पर सैकड़ों सदियों की वेदना की करुण कहानी है। जितना ही उनके सिर पर बोझ बढता जाता है वे उसको उठा कर चलते रहते हैं जब तक जान रहती है, फिर मर जाने पर उसके अपने बच्चों के लिये छोड़ जाते हैं, न तो भाग्य को इसके लिये कोसते हैं न ईश्वर की ही निन्दा करते हैं, यहाँ तक कि मनुष्य को भी दोष नहीं देते, अभिमान नहीं जानते, केवल बस दो दाने अन्न खोट कर किसी तरह कष्टक्लिष्ट प्राण कायम रख सकते हैं। जब उस अन्न को भी कोइ छीनना चाहता है, तथा गर्व से अन्ध निष्ठुर अत्याचार से उसके हृदय पर चोट पहुँचाता है तो ये यह भी नहीं जानते कि किसके द्वार पर न्यायविचार की आशा में खड़े हो, दरिद्र के भगवान को बस एकबार पुकार कर वह चुपचाप मर जाता है।

इन सब म्लान तथा मूढ मुखों में भाषा देनी पडेगी, इन श्रान्त शुष्क भग्न हृदयों में आशा प्रतिध्वनित करनी पडेगी, पुकार कर इन्हें कहना पडेगा—

"अरे एकबार सिर उठाकर खड़े तो हो जाओ फिर देखोगे कि जिनके डर से तुम डर रहे हो वह तुम से भी डरपोक हैं, जभी तुम जाग उठोगे वह भागकर खडा हो जायगा। जभी तुम उसके सामने खड़े हो गये तभी वह रास्ते के कुत्ते की तरह भय तथा सकोच से विलीन हो जायगा। ईश्वर उस पर विमुख हैं, उसका कोई सहायक नहीं, बस मुँह से वह बडी-बडी बातें छाँटता है, वह है, वह मन ही मन अपना हीनता को जानता है।"

कवि यदि तुममें प्राण है तो उठो, उसे साथ लेकर चलो और उसका प्राण दान करो। इस संसार म बडे ही दुःख हैं, बडी व्यथायें

है, बडी गरीबी है, हाय यह तो बडा शून्य है, बडा छोटा है, बड़ा अन्धकार है। अन्न चाहिये, प्राण चाहिये, रोशनी चाहिये, खुली हवा चाहिये, शक्ति चाहिये, स्वास्थ्य चाहिये, आनन्द से उज्ज्वल आयु चाहिये और साहस से विस्तृत हृदय चाहिये। हे कवि इस दीनता में एकबार स्वर्ग से विश्वास तो ले आओ।

हे मेरी रंगीन रंगमयी कल्पने अब मुझे लौटाकर फिर संसार के किनारे ले चलो, अब मुझे हवा हवा में लहरों-लहरों में तथा मोहिनी माया में न भटकाओ। निर्जन विषाद घन अन्तर की निकुञ्जछाया में मुझे बैठाकर न रक्खो। दिन जाता है सन्ध्या हो आती है, उदास हवा में वन साँस लेकर रो पड़ता है। ऐसे समय में मैं निकल पड़ा जनता के बीच। जब मैं जगत में आया था तो न मालूम किस माता ने मुझे यह खेलने की वंशी दी थी। उसीको बजाते-बजाते मैं अपने सुर में ही इतना मुग्ध हो गया कि मैं संसार-सीमा के बाहर चला-सा गया और दिन चले गये रातें चली गई। उस वंशी में मैंने सुर जरूर सीखा है, किन्तु यदि मैं उस सुर की सहायता से इस गीतशून्य अव सादपुर को ध्वनित कर सकूँ, यदि मृत्युंजयी आशा के संगीत से कर्महीन जीवन के एक कोने को यदि एक मुहूर्त के लिये ही तरंगित कर सकूँ, दुःख यदि उसकी भाषा पा ले, अन्तर की गहरी प्यास यदि स्वर्ग के अमृत के लिये जग उठे तभी मेरा गान धन्य होगा, तभी सैकड़ों असन्तोष महागीत में निर्वाण प्राप्त होगा।

कहो आज क्या गाओगे, क्या सुनाओगे ? कहो अपना दुःख झूठा है अपना छोटा सुख भी, जो व्यक्ति स्वार्थमग्न होकर बड़े जगत से दूर है, उसने कभी जीना नहीं सीखा। विश्वजीवन की महान् लहरों पर नाचते-नाचते हमें निर्भय होकर दौड़ना पड़ेगा, सत्य को ध्रुवतारा मानकर तथा मृत्यु को न डरकर। दुर्दिन के आँसू सिर पर गिरेंगे, उसीमें हम उसके अभिसार में चलेंगे जिससे मैंने

जन्म के लिये जीवनसर्वस्वधन सौंप दिया। वह कौन है? नहीं मालूम फिर भी मालूम है उसीके लिये रात के अँधेरे में यात्री मनुष्य युग से युगान्तर की ओर आँधी में वज्रपात में जा रहा है, अपने अन्दर के दीये को सावधानी से पकड़कर सिर्फ मालूम है, जिसने कानों से उसकी पुकार सुनी है वह निडर होकर सकट के भँवर में कूद पड़ा है उसने दुनिया पर लात मार दी है तथा अत्याचारों को सीना खोल कर ग्रहण किया है। मृत्यु के गर्जन को उसने सगीत की तरह सुना है। अग्नि ने उसको जलाया है, शूल ने उसको छेदा है, कुठार ने उसे छिन्न किया है, उसने अपनी सब प्रियवस्तु को इन्धन बनाकर बिना कातरता के ही होमाग्नि जलाई है। हृत्पिंड रूपी रक्तपद्म को उसने छिन्न कर चढ़ा दिया है और अन्तिम बार सर्भाक्त पूजा की है और फिर भी मरकर अपने को कृतार्थ समझा है।

मैंने सुना है उसीके लिये राजकुमार ने फटी कँथड़ी पहिन ली है और विषय विरक्त रास्ते का फकीर हो गया है। मैंने सुना है उसी लक्ष्य के लिये महाप्राण पल-पल में जला है, उसके चरणों में कुशांकुर घुस गये हैं, उसे मूढ़ विज्ञपुरुषों ने अविश्वास किया है प्रिय जनों ने हँसी उड़ाई है, फिर भी उसने नीरव करुण नेत्रों से सभी को क्षमा कर दिया है, उसके अन्दर वह अनुपम सुन्दर लक्ष्य मौजूद था। उसीके लिये मानी ने मान तज दिया, धनी ने धन सौंपा, वीर ने प्राण दे दिये हैं+ + + ++ + + + + "

Idealist के नाते कवि की सीमा

मैंने विशेषकर इस कविता को इसलिये उद्धृत किया कि इसमें कवि के कई तरह की कविताओं के नमूने एक साथ मिल जाते हैं। इसमें एक देखने की बात है कि कवि अपने को सम्बोधितकर एक क्रान्तिकारी की तरह शुरू करते हैं, किन्तु एक *idealist* कवि के नाते वे जल्दी ही *concrete* या निर्दिष्ट चीजों को छोड़कर अनिर्दिष्ट या *abstract* में कूद पड़ते हैं। हमें अगले दौर में भी रवीन्द्रनाथ पर बात करने का मौका मिलेगा।

बँगला साहित्य में रवीन्द्रनाथ का युग अभी खतम नहीं हुआ है, इसलिये रवीन्द्रनाथ के विषय में लिखने के बाद क्या लिखा जाय यह जरा विचार्य है। इसमें सन्देह नहीं कि शुद्ध कवि रवीन्द्रनाथ के समसामयिकों में ऐसे हुए हैं जिनको हम रवीन्द्रनाथ की प्रतिध्वनि नहीं कह सकते। हम पहिले ऐसे तीन कवियों का उल्लेख कर चुके हैं, एक तो अक्षयकुमार बड़ाल, दूसरे सुरेन्द्रनाथ मजुमदार, तीसरे देवेन्द्रनाथ सेन। हम उनकी कविता का उदाहरण भी दे चुके हैं, किन्तु अब हम कुछ ऐसे कवियों का उल्लेख करेंगे जिनको हम काल की दृष्टि से प्राक-अति आधुनिक युग के कवि कहेंगे। सच बात तो यह है वे रवीन्द्रनाथ के समसामयिक हैं, किन्तु उनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः १९१४-१८ के महायुद्ध के पहिले के समय में ही रहा।

द्विजेन्द्रलाल राय

ऐसे कवियों में द्विजेन्द्रलाल राय का नाम सबसे प्रमुख है। एक समय था जब लोग उन्हें रवीन्द्रनाथ के समकक्ष कवि समझते थे, इसमें सन्देह नहीं वे एक उच्च प्रतिभाशाली कवि तथा नाटककार थे। नाटक में तो कला की तथा निरपेक्ष सौन्दर्य सृष्टि की दृष्टि से न हो भावुकता की दृष्टि से वे अक्सर रवीन्द्रनाथ के आगे निकल रहे हैं। आज द्विजेन्द्रलाल की भाषाशैली को अपनाकर चलनेवाले बँगला साहित्य में बहुत कम होंगे, किन्तु रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से मुक्त शैलीकारों (*stylists*) में वे ही कदाचित सबसे प्रमुख हैं। सच बात तो यह है रवीन्द्रनाथ की निरवच्छिन्न विपुल ख्याति के सामने द्विजेन्द्रलाल अच्छी तरह चमक नहीं पाये, दूसरी बात दुर्भाग्य की जो द्विजेन्द्रलाल की हुई वह यह थी कि वे आपेक्षिक रूप से

कारण जनता उनकी 'प्रचार कार्यमूलक' रचनाओं के विरुद्ध सहज ही हो जाती थी। द्विजेन्द्रलाल ने 'भारतवर्ष' नामक मासिकपत्र चलाया जो अब तक सफलतापूर्वक चल रहा है। कवि द्विजेन्द्रलाल ने करीब-करीब उन सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा को दौड़ाया है जिनमें रवीन्द्रनाथ की कीर्ति है, हाँ, उन्होंने नाटक ही लिखे, उपन्यास न लिखे।

सत्येन्द्रनाथ दत्त

सत्येन्द्रनाथ दत्त की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें कुछ भी कृत्रिमता नहीं है, उनकी कविता कभी अलसाती हुई चाल से कभी द्रुत, कभी गरजती, कभी बरसती, कभी तड़पती हुई चली जाती है। रेड इण्डियनों की लोरी, चीनी कवि लो तु की कविता, जेनरल नोगी की एक आह, बल्कान, आईसलैंड की कविता को उन्होंने बँगला में रूपान्तर कर रक्खा है, किन्तु कवि यदि न बतावें तो किसी जगह मालूम भी न हो कि यह जो हम पढ़ रहे हैं और पढ़ते-पढ़ते मस्त होकर झूमने लगते हैं, क्रोध से बलबला उठते हैं या विषाद मे मुरझा जाते हैं यह कोई अनुवाद है। विदेशी कविताओं को बँगला लिबास पहिनाने में सबसे सफल ये ही रहे। दुःख की बात है कि वे भी अकाल-मृत्यु के शिकार रहे। उनकी प्रतिभा कविताओं के अनुवाद के क्षेत्र में अद्वितीय होने पर भी वे केवल अनुवादक ही नहीं रहे। उनकी मौलिक कविताओं की संख्या भी बहुत है। छन्द और भाषा उनके लिये इतनी अनायास थी कि उनकी कविता सीधे पाठक के कानों में पैठते ही हृदय मे पैठ जाती है। बंगाली आत्मा के साथ उनकी इतनी तादात्म्यता थी कि इस क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ भी उनसे कहीं आगे बढ़ पाये हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। सत्येन्द्रनाथ दत्त की मृत्यु पर रवीन्द्र ने एक बहुत ही सुन्दर कविता लिखकर उनकी असामान्य प्रतिभा को दाद दिया है। उन्होंने लिखा—

रूप से विकसित होती, और वे हमें एक विराटतर रूप में नजर आते, उनकी एक छोटी-सी कविता का कुछ मूल, और पूरा अनुवाद देकर हम इस प्रसंग को खतम करते हैं

चम्पा

आमारे फुटिते होलो बसन्तेर अन्तिम निश्वासे
विपराण जखन विश्व निर्मम ग्रीष्मेर पदानत
रुद्र तपस्यार वने आध त्रासे आधेक उल्लासे
एकाकी आसिते होलो—साहसिका अप्सरार मतो।

इत्यादि

"जब वसन्त की अन्तिम साँस चल रही थी तब मुझे पैदा होना पड़ा, उस समय विश्व निर्मम ग्रीष्म का पदानत था। साहसिका अप्सरा की तरह रुद्र तपस्या के वन में हमें आधे त्रास में तथा आधे उल्लास में आना पड़ा। शोषण क्लिष्ट वन एकबार चचरा उठा, उदास कुंज में क्लान्त कोकिल का स्वर एकबार सुनाई पड़ा, ऐसे समय में मैंने जन्म-यवनिका प्रान्त में अपने नये सुकुमार नेत्रों को खोलकर जलस्थल को देखा तो पाया कि ये शून्य, शुष्क, विह्वल, जर्जर हैं। फिर भी विश्वास के वृन्त पर कँपता हुआ चम्पा मैं निकल ही आया। कड़ी से कड़ी धूप में मैं नहीं गिरूँगा, भयङ्कर शराब की तरह जो रौद्र है जिसकी गर्मी से विश्व तड़पकर रह जाता है मैं उसे विधाता के आशीर्वाद से आसानी से पी जाता हूँ। मैं धीरे से उषा का आतप्त कर पकड़कर निकल आया, देह में मूर्छा आती है, मन में मोह-सा छा जाता है, हर मुहूर्त यही अनुभव करता हूँ। फिर भी सूर्य की विभूति से मेरा सलोनापन ही बढ़ता है। इसलिये मैं अग्नि के देवता को नमस्कार करता हूँ। मैं चम्पा हूँ, सूर्य का सौरभ ही तो हूँ।"

सत्येन्द्रनाथ की इस कविता के अर्थ को यदि हम चम्पा नामक प्रसिद्ध पुष्प की जन्मकथा तक ही सीमित रक्खें तो यह एक मामूली कविता ही रहेगी, इसकी भाषा, कल्पना तथा शैली की हम चाहे कितनी भी प्रशंसा करें, किन्तु नहीं यही सब कुछ नहीं। "आधुनिक काव्यसाहित्य की एक धारा मनुष्य तथा प्रकृति को *allegorical*, *symbolical* और *mystical* दिशा से पकड़ने की चेष्टा है। इस धारा के प्रवर्तक यह स्वयं तथा शैली हैं। *Allegorical, symbolical* तथा *mystical* इनको ठीक-ठीक हिन्दी में समझाना मुश्किल है, फिर भी हम व्याख्या से इनका अर्थ स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे। पहिली बात तो यह है कि *allegory* भी रूपक है और *symbol* भी रूपक है किन्तु दोनों में यथेष्ट प्रभेद है। *Allegorical* श्रेणी के रूपक में एक साथ दो चीजें रहती हैं, एक तो बाहर जो कुछ स्थूल रूप में कहा जा रहा है वह, और दूसरी वह जिन बातों या भावों के वे रूपक हैं। स्थूल कहानी के रूप में भी हम उसका मजा उठाते हैं और जो कहानी आड़ में चल रही है उसका भी हम मजा उठाते हैं। जैसे स्पेंसर की *Farie Queen* या द्विजेन्द्रलाल राय का स्वप्नप्रयाण काव्य *Allegory* के उदाहरण हैं। *Strindberg* का *Lucky Pair* भी एक ऐसा दोमुहा रूपक है। *Symbolical* रूपक नाट्य या काव्य में यह दोनों धारा रहने पर भी यहाँ वास्तव में स्थूल घटना को कोई प्रमुखता प्राप्त नहीं है, जो इस स्थूल घटना से परे दूसरी चीज है वही मुख्य है। जैसे रवीन्द्रनाथ का "डाकखाना" है, इसमें डाकखाना, डाकिया, मुखिया कोई सार्थकता नहीं रखते, इनसे परे जो चीजें हैं वे ही इनमें मुख्य हैं।

इस पर यदि हम *allegorical* और *symbolical* का हिन्दी प्रतिशब्द करना चाहें तो हमें वस्तुरसप्रधान रूपक और भावरस प्रधान रूपक कहना पड़ेगा। प्राक्-महायुद्ध (१६१४ १८) युग में यूरोपीय साहित्य में भावरसप्रधान रूपक की प्रधानता थी। मटरलिङ्क,

ईटस (*Yeats*) के काव्य, इसी श्रेणी में आते हैं" सत्येन्द्रनाथ की इस 'चम्पा' कविता को हम जब रूपरसप्रधान रूपक के रूप में लेंगे तभी इसमें एक दूसरा ही आनन्द दिखलाई पड़ेगा। अजितकुमार चक्रवर्ती ने सत्येन्द्रनाथ के सम्बन्ध में फ्रेञ्च कवि *Paul Verlaine* के सम्बन्ध में जो कहा है कि *he paints with sound* वे ध्वनि से चित्र खींचते हैं उसीको दुहराया है यह ठीक ही है, सचमुच उनको छन्द तथा भाषा पर अद्भुत अधिकार था। "वर्लेन की तरह उनके छन्दों के स्पन्दन में अरूप जगत का स्पन्दन मानो पकड़ा गया है।" +

रवीन्द्रनाथ की कविताओं का बहुत कुछ अनुवाद हो सकता है, किन्तु सत्येन्द्रनाथ की कविता का अनुवाद होना करीब करीब असंभव है। ऐसे अबंगाली पाठक जो बँगला भाषा की आत्मा तक नहीं पहुँचे हैं वे उनकी कविता को समझ नहीं सकते।

इन्दिरा देवी और प्रियम्वदा देवी

इन्दिरा देवी तथा प्रियम्वदा देवी ने भी कुछ कवितायें लिखी हैं, किन्तु इन पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव इतना स्पष्ट है कि मालूम होता है हम रवीन्द्रनाथ को ही पढ़ रहे हैं। इन्दिरा देवी की निम्न लिखित कविता भाव तथा भाषा में बिल्कुल रवीन्द्रनाथ की ही मालूम होती है। हम मूल का केवल एक *Stanza* ही उद्धृत करते हैं, जिन पाठकों ने रवीन्द्र काव्य का मूल में आस्वादन किया है वे इसको देखकर धोखे में आ जायँगे।

हासिखेलार अभिनये अश्रुजले ढाकि
भेबेछिलाम एमनि कोरे तोमाय देबो फाकि
बुके आमार जे सुर बाजे, गुञ्जरे जा मर्ममाझे

+देखो श्री अजितकुमार चक्रवर्ती प्रवासी, कार्तिक १३२५।

भेवेछिलाम सुरेर साजे सारसनो तारे टाकि।
हासिखेलार मिथ्याछले तोमाय दिये फाँकि।

"हँसी-खेल के अभिनय में अश्रुजल ढककर मैंने सोचा था इसी प्रकार तुम्हें धोखा दे दूँगी। मैंने सोचा था कि मेरे हृदय में जो सुर बजता है तथा मर्मस्थल में जो कुछ गूँजता है उसे सुख के लिबास में ढक रक्खूँगी हँसी-खेल के अभिनय में तुम्हें धोखा देकर"

"प्रभात जब दुपहर में परिणत हो गया, तप्त वायु पैरों में अग्निकणा की तरह लगी, देह जब थकावट के मारे मिट्टी से छूने जाने लगी, आँखों में जितने ही आँसू भरते थे और मैं उन्हें गोपन करती थी, तभी तुमने मुझे गोद की लड़की की तरह गोद की ओर खींच लिया।"

"मैंने तो तुमसे नहीं पूछा कहाँ मेरा स्थान है, मैंने तुम्हारे पैरों पर आँसुओं की बाढ़ तो नहीं ला दी थी। बीरान मग में मैंने अपनी व्यथा निवेदनकर तुमसे सहायता तो नहीं माँगी थी, फिर भी तुमने कैसे कान टालकर मेरे हृदय की गहन बातों को तथा गोपन अभिमान को सुन लिया?"

"तुमने कैसे मेरी धोखेबाजी का पता पा लिया केवल यही बात मैंने तुमसे अबतक नहीं सुनी। न मालूम कब कौन-सा सुयोग पाकर तुम्हारी हँसी की बाढ़ ने आकर मुझे हँसकर बहा लिया और इस प्रकार मेरी दुविधा मिट गई। कैसे तुमने मेरी प्रतारणा पकड़ ली।"

प्रियम्वदा देवी की भी एक छोटी-सी कविता नीचे दी जाती है

आशातीत

तोमारे पारि न धरिते, पारि ना धरिते
मनेते मिशाये आपना करिते
ओरे आकाशेर आलो,

"कमर तक पानी में खड़े होकर किसान हँसुआ चलाता है, धान अग्रभाग की सोंधी गन्ध हवा में फिरती रहती है। ललाई लिये हुए धान के अग्रभागों को पानी के नीचे नवाकर मेरी नाव उसीके बीच से चलती है।"

"धान की गड्डियों को मैं इस पार उस पार करता हूँ, पाट के ढेर को भी ढोता-भरता हू, दिनरात कितने लोगों की कितनी ही बातें सुनता हूँ, में बैठकर मन-ही मन खेने का हिसाब लगाता रहता हूँ।"

"पानी के ऊपर से दुर-सा बिखराकर सूर्य उगता है, दिन का खेना खतमकर पश्चिम में डूब जाता है। बारहों महीने में एक भी दिन उसे छुट्टी नहीं है, उसीके साथ मैं भी घाट की नाव को खेता हूँ।"

"देशेर लोक" (देहाती) नामक कविता में देहाती दुनिया का अत्यन्त सच्चा चित्र खींचने के बाद वे कहते हैं—

अविचार अत्याचार भाने निज करमेर फल

नयनेर जल छाड़ा वाइ किछु थाके ना सम्बल

याने 'वह अविचार तथा अत्याचार को अपना ही कर्म फल सोचता है, इसीलिये आँसुओं के सिवा उसका कोई सम्बल नहीं है।' कवि जो वर्णन करते हैं वह है तो सच, इस अभागे देश के गरीबों की यही मनोवृत्ति है, किन्तु एक क्रान्तिकारी कवि की तरह बजाय इसके कि वे इनको कविता का चाबुक मारकर उठाते वे उनकी इस भाग्यवादी मनोवृत्ति की सराहना करते हैं

एइ देश—एइ लोक—हासिओ ना शिक्षा अभिमानी

धर्म जाने तार काछे सत्य मूल्य कार कतोखानि

याने 'ऐसा तो हमारा देहात है, और ये देहाती हैं, सुनकर हे शिक्षाभिमानी मत हँसना, धर्म जानता है कि उसके निकट किसकी कितनी सच्ची कीमत है।'

यह तो एक तरह से प्रतिक्रियावाद का प्रचार करना हुआ, यह तो वही बात हुई कि इस दुनिया में जमींदारों की जबर्दस्ती और जुल्म सहो, इसके बदले में अगली दुनिया में हूरो गिलमा मिलेंगे। मालूम होता है ऐसा लिखते समय कवि यतीन्द्रमोहन "एबार फिराओ मोरे" नामक रवीन्द्रनाथ की कविता के उस अश को भूल गये

एई सब मूढ़ म्लान मुखे
दिते हबे भाषा, एई सब श्रान्त, शुष्क, भग्न बुके
ध्वनिया तुलिते हबे आशा, डाकिया बलिते हबे
मुहूर्त तुलिया शिर एकत्र दाँडाओ देखि सबे,
जार भये तुमि भीत से अन्यायी भीरू तोमा चेये
जखनि जागिबे तुमि तखनि से पलाइबे धेये +

रवीन्द्रनाथ भी *idealist* होने के नाते ऐसे मामलों में अन्त तक पूरी तरह निर्वाह नहीं पाते, किन्तु अक्सर उनकी प्रतिभा उनको इस प्रकार की गलती से बचा भी लेती है। यतीन्द्रमोहन की यह मनोवृत्ति हम उनकी "गौरी" नामक कविता को रवीन्द्रनाथ की उसी सन में प्रकाशित 'येनास्या पितरो जाता,' नामक कविता की तुलना करते हैं तो पाते हैं। दोनों में एक लड़की का विवाह उससे कहीं अधिक उम्र वाले बुड्ढे वर से होता है। दोनों विधवा हो जाती हैं, किन्तु दोनों में बड़ा प्रभेद है। यतीन्द्रमोहन की गौरी विधवा होती है, रवीन्द्रनाथ की मजुलिका भी विधवा होती है। दोनों पितृसेवा तथा घर के कामकाज में मन लगाने की व्यर्थ चेष्टा करती हैं।

मजुलिका का
दु खे सुखे दिन हये जाय गत
भीतर जले मरे पड़ा भेसे जाता फूलेर मतो
अवशेषे होलो

+ इसका अनुवाद रवीन्द्रनाथ के 'एबार फिराओ मोरे' में आ गया।

मजुलिकार वयस भरा सोलो

याने "दुख सुख में उसके दिन बीत जाते थे, मानो वह कोई स्रोत के पानी में गिरा हुआ तथा बहा हुआ फूल थी। अन्त में मजुलिका को उम्र सोलह हुई।"

और गौरी का क्या हुआ ?

काल कि कारेओ छाडे

बछर बछर मेयेर वयस बाडे।

आट थेके से पोलय पलो, बुझलो क्रमे निने

अवस्था तार कि जे।

याने "समय किसी को भला छोड़ता है ? आठ से उसकी उम्र बढ़ते-बढ़ते सोलह वर्ष की हो गई। धीरे धीरे वह समझ गई कि अपनी परिस्थिति क्या है।"

अपनी परिस्थिति समझने पर भी वह अन्त तक लाखों हिन्दू बालविधवाओं की तरह मूक रहकर अपने पिता की मूर्खता का अपने प्राण का तिल तिल देकर प्रायश्चित्त करती है। वह एक "अनाघ्रात स्वर्ण चम्पा" की तरह ही अपना जीवनलीला समाप्त करती है।

वर्षों तक रवीन्द्रनाथ की मजुलिका भी इसी तरह रहती है। मजुलिका की माँ एक दिन उसके पिता से कहती है—क्यों जी मजु की शादी न कर दी जाय।

पिता हुक्के के नल से मुँह हटाकर कहता है—मुझे मर जाने दो फिर माँ और बेटा एक ही साइत में शादी कर लेना—और मुँह फेरकर अपना उपन्यास पढ़ने लगता है। बात यहीं खतम हो जाती है।

कुछ दिनों में माता मर जाती है। पिता कुछ दिन बीमार रहते हैं, बीमारी में पुलिन डाक्टर उन्हें देखता है। अच्छे वे हो जाते

हैं, किन्तु कुछ ही दिन में वे इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि बिना विवाह किये संसार धर्म का निर्वाह नहीं हो सकता। तदनुसार वे विवाह करने जाते हैं किंतु विवाह से लौटने के बाद वे देखते हैं कि मजुलिका घर से भाग गई है, और पुलिन से शादी करने के बाद दोनों फर्रुखाबाद चले गये हैं।

ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि यतीन्द्रमोहन बागची अपने गुरु के पीछे रह गये हैं, यह तो मतामत की दृष्टि से हुआ, किन्तु कला के क्षेत्र में भी सम्पूर्ण रूप से वे उसी लीक पर चलते हैं जिस पर रवीन्द्रनाथ चल चुके हैं। हम कहीं भी इनमें कोई मौलिक धारा नहीं देखते। ऊपर जिन कविताओं की विषयवस्तु की तुलना की गई है उनके विषय में मजे की बात यह है कि रवीन्द्रनाथ की कविता यतीन्द्रमोहन की कविता के ठीक एक महीना पहिले 'प्रवासी' में प्रकाशित हुई थी। क्या यह रवीन्द्रनाथ के उत्तर में लिखी गई थी? यतीन्द्रमोहन की कविता की आखिरी पंक्तियों को देखकर यह सन्देह होता है कि शायद यह जवाब में लिखी गई थी। वे पंक्तियाँ यह हैं

तबु जेनो, गौरी ओरि नाम—
रूपे गुणे नामेर मतन—नोयनेर तृप्ति चित्तेर विश्राम।
"फिर भी जानना, गौरी इसी का नाम है, रूप तथा गुण में नाम की तरह ही है, आँखों के लिये तृप्ति और चित्त के लिये विश्राम है।

कालिदास राय

कालिदास राय भी रवीन्द्र प्रभाव में पले हुए एक कवि हैं, सत्येन्द्र नाथ की तरह वे भाषा और छन्द के आचार्य नहीं जँचते, तथा रवीन्द्र प्रभाव होते हुए भी उन्होंने किसी जगह भी रहस्यवाद को पास नहीं फटकने दिया। इनके विषयों में ही कुछ ऐसी मधुरता

होती है तथा विषय को वे प्रतिभा के साथ निभाते हैं कि उनकी कवितायें पठनीय तथा मौलिक रसयुक्त हो जाती हैं। मध्यवित्त श्रेणी के छोटे छोटे सुख दुःखों को उन्होंने इस खूबी से चित्रित किया है, कि कहते ही बनता है। "छात्रधारा" नामक कविता में उन्होंने शिक्षक को इस भावुकता के साथ चित्रित किया है कि कोई भी सहृदय शिक्षक इसे पढ़कर आँसू नहीं रोक सकेगा। प्रत्येक समाज में ये शिक्षक कितने उपयोगी हैं, और लोग उन्हें कितना बेकार समझते हैं। इस कविता को पढ़ते पढ़ते हमें चेखोफ के उस शिक्षक का स्मरण हो आया, जो मरते समय प्रलाप में कहता है "वालगा नदी वालडाइ पहाड़ से निकलकर फलाने समुद्र में जाकर गिरती है।" करुण और हास्यरस का अद्भुत मिश्रण है, कहानी की पश्चाद्भूमि के कारण यह दृश्य और भी करुण हो जाता है। हम कालिदास राय की उस कविता का अनुवाद नीचे देते हैं—

छात्र धारा

प्रति वर्ष वे झुंड के झुंड इस विद्यामठ के नीचे आते हैं और वे कलरव करते हुए चले जाते हैं, किशोर का किसलय पत्ते में याने यौवन के हरेपन व गौरव को प्राप्त करते हैं। उन्हें मैं प्यार करता हूँ, पास बुलाता हूँ, सबका नाम जान रखता हूँ, रोज रोज उनसे भेंट होती है। डाट फटकार बताता हूँ, एक पहर तक सीख भी देता हूँ, किन्तु फिर भी कुछ याद नहीं रहती। दो चार दिन की यह मुलाकात, समुद्र के बालू पर जैसे रेखा, नई लहर आते ही पुछ जाती है। नन्हे पैरों के नाग नये-नये चरण चिह्नों की ताड़नासे एकसे हो जाते हैं। वे यहां एकत्र तो होते हैं किन्तु जानते नहीं कहाँ जायेंगे, विद्यालय मानो एक सराय है। दो चार दिन एकत्र किसी कामना करते हैं, फिर मिलकर जैसे नीति-सार और कथा माला गूंथते हैं।

कभी रास्ते में भेंट हो जाती है तो कोई गुरु कहकर हाथ उठा-कर नमस्कार करता है तो मैं हँसता हुआ कहता हूँ "जीते रहो, क्या काम काज हो रहा है ?"

सोचते-सोचते चलता हूँ, नाम तो याद नहीं आता, कितने दिन पहिले छात्र था ? यादगार को लेकर खींचातानी करता हूँ, कैशोर का उसका चेहरा याद आकर भी नहीं याद आता। आना जाना रोज़ का होता है, बहुत दिनों तक भेंट होती है, फिर भी वे याद क्या नहीं रहते ? व्यक्ति जाकर भीड़ में मिल जाता है, गले में माला पहिन लेने पर प्रत्येक फूल को भला कौन याद रख सकता है ?

इस जीवन पर तोड़ फोड़ मचाकर इसे हरा तथा सरस करते हुए छात्रों की धारा बह जाती है, वह फेनिलता तथा उच्छ्वास तुच्छ हो जाता है और अन्दर विलीन हो जाता है। जब मैं बारबार देखता हूँ तो मेरे मन को घेरकर कुछ म्लान चेहरे उग उठते हैं, जो कलरवमय मनोल्लास हैं वह तो सब भूल जाते हैं, किन्तु ये म्लान मुख याद रह जाते हैं।

कोई तो भूख से म्लान है, कोई रोग से अधमरा है, थकावट से किसी की चितवन करुण हो रही है। कोई बेंत के डर से कोठरी में छिपा रहता है, किसी की आँखें नींद से भरी हैं। कोई क्लास में बैठकर जँगले से बाहर की ओर देखता है, मानों कोई पिंजरे में बन्द चिड़िया हो। आसमान में पतंग को देखकर उसका मन उड़ान भरने लगता है, उसके चेहरे पर विषाद की अस्फुट छाया पड़ती है। कोई खेल के मैदान को याद कर सबक भूल जाता है, किसी की बुद्धि में ही बात नहीं आती, कोई तो घर की तथा स्नेहभरे मां-बहिनों को याद कर बारबार घड़ी की ओर देखता है।

उधर वायु स्वास्थ्य तथा आयु लेकर पुकारती है, वे उस पुकार को बन्द कमरे में बैठकर सुनते हैं। हाथ में स्याही मुँह में स्याही ऐसा बना वैसा ही मालूम देता है मानों नन्हा-सा

बादलों मे ढँका हो, यह मुझे याद पड़ता है। और सब तो भूल चुका हूँ किन्तु यह सब भूल न सका। एकबार आँख मूँदते ही ये म्लान-मुखी की पंक्तियाँ मन को आकुल कर डालती हैं।

निरुपमा देवी

निरुपमा देवी बँगला मे विशेष रूप से अपने उपन्यासों के कारण प्रसिद्ध थीं, किन्तु उन्होंने कुछ अच्छी कवितायें भी लिखी हैं। सच बात तो यह है कि बगला के सभी सुकुमार साहित्य के लेखक साथ-साथ कवि भी होते हैं। शरत्चन्द्र आदि कुछ ऐसे औपन्यासिक बगला भाषा मे हुए हैं जिन्होंने कविता कभी नहीं लिखी, किन्तु वे अपवाद हैं न कि नियम। हम जब अति आधुनिक बँगला काव्य पर आयेंगे तो दिखलायेंगे बँगला मे अति आधुनिक कविता के जो प्रवर्तक हैं वे ही अति आधुनिक गल्पकार भी हैं। निरुपमा देवी की 'तृण' नामक कविता का पहिला *Stanza* हम उद्धृत करते हैं, पाठक देखेंगे इसकी भाषा बड़ी सगीतमय है।

> मोरा कचि कचि श्याम तृणदल
> करि जीवनेर पथ सुश्यामल
> उठि धरणीर प्राण फुँडिया
> रहि कठिनेर बुक जुड़िया
> राखि घन मखमले मुड़िया
> एइ कंकरमय धरातल।
> मोरा कचि कचि श्याम तृणदल।

"हम हरी हरी नरम घास के दल हैं, हम जीवन के पथ को हरा बनाते हैं। हम पृथिवी का प्राण फोड़कर उठते हैं, कठिन के हृदय को व्याप्त कर हम रहते हैं, हम इस कंकड़मय धरातल को घने मखमल मे मोड़ रखते हैं। हम हैं हरी हरी नरम घास के दल।"

यह कविता भी एक रूपक है। निरुपमा देवी पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव स्पष्ट है, किन्तु वह रहस्यवाद से सम्बन्ध नहीं रखतीं। फिर भी वह एक भाववादिनी (*idealist*) लेखिका थीं।

यतीन्द्रनाथ सेनगुप्त

यतीन्द्रनाथ सेनगुप्त की एक कविता 'हाट' का कुछ अंश लीजिये †

दूरे दूरे ग्राम दशबारोखानि
माझे एकखानि हाट
सन्ध्याय सेथा ज्वले ना प्रदीप
प्रभाते पड़े न झाँट।
बेचा केना सेरे विकाल बेलाय
जे जाहार सबे घरे फिरे जाय
बकेर पाखाय आलोक लुकाय
छाड़िये पुबेर माठ
दूरे दूरे ग्रामे ज्वले उठे दीप—
आँधारेते थाके हाट।

'दूर-दूर पर दस बारह गाँव हैं और बीच में एक हाट लगता है, सन्ध्या के समय न तो वहाँ दीया जलता है न तो सबेरे झाड़ू ही लगता है। खरीदना-बेचना समाप्त कर सब अपने अपने घर ही लौट जाते हैं, बगुले के पर पर चल कर रोशनी मानो पूर्व का मैदान पार कर छिप जाती है। दूर गाँवों में दीये जल उठते हैं, किन्तु हाट अँधेरे में ही रहता है।

दिवसेते सेथा कत कोलाहल

---

† हाट माने यह गाँव का बाजार जो केवल हफ्ते में एक या दो दिन लगता है।

चेना अचेनार भिड़े,

क्तो ना छिन्न चरणचिह्न

छड़ानो मे ठाँई घिरे।

\+ \+ \+ \+

दिवसे थाके ना कथार अन्त

चेना अचेनार भिड़े,

कतो के आसिलो, कतो या आसिछे

कतो ना आसिबे हेथा

ओपारेर लोके नामाले पसरा

छुटे एपारेर क्रेता।

हिसाब नाहिरे एलो आर गेलो

कतो क्रेता विक्रेता

'दिन भर यहा कितना कोलाहल रहता है, परिचित तथा अपरिचित की भीड़ रहती है। उस जगह को घेरकर न मालूम कितने लोगों के पदचिह्न बने हुए हैं। दिन भर तो इस परिचित अपरिचित की भीड़ में बातों का अन्त नहीं रहता। कितने आये, कितने आ रहे हैं, कितने आयेंगे। उस पार के लोग यदि अपना सामान उतारें तो इस पार के क्रेता दौड़ पड़ते हैं। इसका कुछ हिसाब नहीं कि कितने क्रेता और विक्रेता आये।'

'नये सिर से यह हाट हर बार बैठता टूटता है, दिन रात नये यात्री हैं, इस नाटक का खेल जारी है। कोई तो आते वक्त गाँठ में कुछ बाँध कर जाता है और कोई रोता है, उदार आकाश और मुक्त वायु में चिरकाल तक एक खेल चलता रहता है।

इस कविता पर रवीन्द्र प्रभाव स्पष्ट है। रवीन्द्रनाथ एक वास्तववादी नहीं बल्कि भाववादी होने पर भी अपनी प्रतिभा की

विराट तूम्बी के कारण पानी के ऊपर ही रहते हैं, किन्तु उनके बहुत से चेलों में इस प्रतिभा की देन न होनेके कारण वे अक्सर रूपक तक ही रह जाते हैं यानी रूप को गौण बनाकर कविता लिखते हैं। उसी का यह कविता एक उदाहरण है। हाट का वर्णन पढ़कर कि वहाँ साँझ का दीया भी नहीं जलता हमारे दिल में करुणा का उद्रेक होते न होते हम अनुभव करते हैं कि कवि कह रहे हैं खेत की लेकिन गा रहे हैं खलिहान की। इस दृष्टि से बँगला भाषा को अतुल शब्दों का ऐश्वर्य देने पर भी रवीन्द्रनाथ का प्रभाव बंगला कविता के आधुनिक होने में बाधक साबित हुआ। जिसे देखो वही *Allegory*, *symbolism* तथा *mysticism* की तरफ दौड़ा। सभी कविता में इस तरह बातें करने लगे मानों वे इस सृष्टि के पीछे जो रहस्य है उसके गुहगृह में उनका प्रवेश हो चुका है।

काज़ी नज़रुलइस्लाम

काज़ी नज़रुल बँगला के एक शक्तिशाली कवि हैं, उनकी कविता ने एक ज़माने में बंगला साहित्य में बड़ा तहलका मचाया था। एक धूमकेतु की तरह वे महायुद्ध के बाद बंगला साहित्य में अग्नि दीक्षा लेकर आये थे, विद्रोही के रूप में वे आये, किन्तु बाद को विश्लेषण करने पर मालूम हुआ कि उनकी अपनी कुछ विशेषता होने पर भी वे रवीन्द्रीय सौरमण्डल के ही ज्योतिष्क हैं। हाँ वे रवीन्द्रनाथ के उन एकलव्यों में नहीं हैं जो गुरु के ही इर्दगिर्द चक्कर काटते रहे, कहीं कहा बानी में नवीनता की पुट है। काज़ी नज़रुल भाषा पर ज़बर्दस्त अधिकार रखते हैं, उनकी कविता में ओज-गुण एक नई चीज़ है। उनके पहिले के कवियों में द्विजेन्द्रलाल राय में ही शायद उनसे ज़्यादा ओज है, किन्तु द्विजेन्द्रलाल का ओज भाव-प्रधान है, और काज़ी नज़रुल का भाषा प्रधान। उनकी 'विद्रोही' कविता की एक ज़माने में बड़ी धूम थी, उसमें बम, माइन, डिना-माइट की भरमार है। यह एक बहुत ही लम्बी कविता है। इनकी

किसी किसी कविता में इज़राईल, इसराफील, सूर, कयामत आदि इस्लामी पौराणिक-व्यक्ति, वस्तु तथा घटनाओं का उल्लेख है, किन्तु इससे उनकी कविता का खरापन बढ़ा है घटा नहीं। खैर अक्सर वे ऐसी उपमा, उपमेयों को न लाकर बंगला कविता के अनुसार ही चलते हैं। उनकी सौ में निन्यानवे कविता में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे मालूम हो कि वे मुसलमान परिवार में पैदा हुए हैं। काजी नजरुल बँगला के एक ऊँचे दर्जे के कवि हैं, उनका स्थान सत्येन्द्रनाथ दत्त से कम नहीं है। हम नीचे उनकी 'सिन्धु' नामक कविता का कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

> हे क्षुधित बन्धु मोर तृषित जलधि
> एतो जल बुके तबो, तबु नाहि तृषार अवधि।
> एतो नदी, उपनदी तव पदे करे आत्मदान,
> बुभुक्षु, तोबु कि तव भरिलो ना प्राण।
> दुरन्त गो महाबाहु
> ओगो राहु
> तीन भाग ग्रसियाछ, एक भाग बाकी,
> सुरा नाइ—पात्र हाते काँपितेछे साकी।

"हे मेरे क्षुधित मित्र, तृषित जलधि, तुम्हारे हृदय में इतना जल है फिर भी प्यास की कुछ सीमा नहीं है। इतनी नदियाँ तथा उपनदियाँ तुम्हारे चरणों में आत्मदान करती हैं, किन्तु हे बुभुक्षु फिर भी क्या तुम्हारा दिल न भरा? हे दुरन्त महाबाहु हे राहु तुमनेतीन भाग तो ग्रस लिया अब एक भाग बाकी है। शराब नहीं रही, इसलिये हाथ में पात्र लेकर साकी काँपता है।"

समुद्र पर बहुतों ने लिखा है, किन्तु निम्नलिखित पंक्तियों में फिर भी कुछ विशेष नई बात है—

मन्थन-मन्दार दिया दस्यु सुरासुर
मथिया लुंठिया गेछे तव रत्नपुर,
हरियाछे उच्चै श्रवा, तव लक्ष्मी, तव शशीप्रिया
तारा सब आछे आज सुखे स्वर्गे गिया।
करेछे लुन्ठन,
तोमार अमृत-सुधा मार जीवन तो।
मन गेछे आछे शुधु क्रन्दन कल्लोल,
आछे ज्वाला आछे स्मृति व्यथा उतरोल।
ऊर्ध्वे शून्य, निम्ने शून्य, शून्य चारिधार
मध्ये काँदे वारिधार, सीमा हीन रिक्त हाहाकार
हे महान हे चिर विरही
हे सिन्धु, हे बन्धु मोर, हे मोर विद्रोही
सुन्दर आमार,
नमस्कार।

"मन्दार रूपी मथनी से डाकू सुरासुरों ने तुम्हारे रत्न-पुर को मथकर लूट लिया है, तुम्हारा उच्चै-श्रवा हर लिया, तुम्हारी लक्ष्मी हर ली, तुम्हारी शशी प्रिया को भी हर लिया, वे सब तो स्वर्ग में जाकर सुख से हैं। उन्होंने तुम्हारी सुधा भी हर ली। मन चला गया, सिर्फ क्रन्दन-कल्लोल ही रह गया। केवल ज्वाला बाकी है, तथा व्यथा से उतावली स्मृति मौजूद है। ऊपर शून्य है नीचे शून्य है, चारों तरफ शून्य है, बीच में पानी की धारा रिक्त हाहाकार बन कर रोती है। हे महान, हे चिर विरही समुद्र, हे मेरे मित्र, हे मेरे सुन्दर विद्रोही तुम्हें नमस्कार है।"

काजी नजरुल की कविता की यह विशेषता मालूम होती है कि

उसमे गति भी है, ओज भी है किन्तु कोई उद्देश्य नहीं। उनकी विद्रोही कविता इसी प्रकार की है। काजी नजरूल विद्रोही जरूर हैं, किन्तु उनके मन मे विद्रोह का कोई स्पष्ट उद्देश्य न होने के कारण उनका विद्रोह अक्सर केवल साहित्यिक पैर फटफटाना मात्र रह जाता है। नजरूल की एक कविता है 'देखबो एबार जगतटाक' याने "अब दुनिया देखूँगा"। इस कविता में कवि कहते हैं कि वे अब घर में बन्द नहीं रहेंगे, वे अब दुनिया देखेंगे "कैसे वीर मल्लाह डूबकर समुद्र के अन्दर से मोती ले आता है, कैसे साहसी लोग दूर आकाश की ओर उड जाते हैं कैसे और काहे के नशे म लाखों की तादाद म लोग मरते हैं, किसके अभियान म लोग हिमालय का चूडा में जाना चाहते हैं" इत्यादि कवि जानना चाहत हैं। वे अब पिंजरे में बन्द नहीं रहना चाहते, वे इन सब बातों को दुनिया घूमकर देखना चाहत हैं। वे पाताल फाडकर नीचे उतरना चाहत हैं तथा फोडकर आकाश मे उठना चाहते हैं। वे विश्वजगत को अपनी ही मुट्ठि में भरकर रखना चाहते हैं। इतना होने पर भी सच बात तो यह है कि यह समझ म नहीं आता कि कवि चाहत क्या हैं' नतीजा यह है कि ऐसी कविता क, या तो आध्यात्मिक या छायावादी रहस्यवादी अर्थ लेना पडेगा।

मैं समझता हूँ इस अस्पष्टता के लिये नजरूल को दोषी ठहराना ठीक नहीं होगा। सचमुच बात तो यह है कि नजरूल तथा उनके साथी विद्रोह करना चाहते हैं, किन्तु क्या करना चाहते हैं यह इन्हें पता नहीं। तोडना, फोडना, फाडना शब्द के अधिक इस्तेमाल से ही कोई क्रान्तिकारी या आधुनिक नहा हो सकता।

राधाचरण चक्रवर्ती

राधाचरण चक्रवर्ती राबीन्द्रीय मडल के एक कवि हैं, उनकी सभी कविता रहस्यवाद का पुट लिये हुए होती है। एक कविता लीजिये—

आकाशेर मेघरन्ध्रे अन्धकारे तुमि चेये थाको
तारा होये।
आँखिर पलकहारा होये
तुमि मोरे डाको
आभासे इङ्गिते शत डाके—
आमि थाकि क्षुद्रतार सीमा नागपाशे
शरीर एर पाशे
बाँधा शत पाके
चारिदिके स्वार्थ कोलाहल
द्वन्द्वद्वल
संग्राम संघात
घात प्रतिघात
तोबु माझे माझे आसे काने
तरो डाक—त्रास करिया त्य प्राणे।

'आकाश के बादलों के छिद्र में अन्धकार तुम मेरी ओर नक्षत्र होकर देखते हो, पलक नहीं मारते। तुम मुझे पुकारते हो, आभास से, इशारे से, सैकड़ों पुकार से। मैं क्षुद्रता की सीमा नागपाश में सैकड़ों बन्धन में बंधा हुआ रहता हूँ। चारों तरफ स्वार्थ का कोलाहल है, द्वन्द्वदल है, संग्राम संघात है, घात प्रतिघात है। फिर भी बीच-बीच में तुम्हारी पुकार आ ही जाती है, तुम्हारी पुकार प्राणों को उत्त्रस्त कर देती है।

चारिदिके कामना-अप्सरी
नेल लुकोचुरि-खेला करतल मोर दुरि चक्षुचेप धरि
दृष्टि रोध करि,

तवु माझे माझे जेनो अङ्गुलिर फाँके
आँखिर किरण तवो आसि मोर लागे
नयनेर आगे
आलोहित रागे

"चारों तरफ कामना अप्सरी मेरी दोनों आँखों को बन्दकर मुझसे लुकछिपौवल खेलती है। मेरी दृष्टि रुद्धकर, फिर भी बीच बीच में उँगलियों के बीच से तुम्हारी आँख की किरणें जैसे मुझे आँखों के सामने लाल-लाल दिखाई दे जाती है।"

जोन जावो, तोबु आमि जावो
हे अनन्त चलो चलो आमि तोमा पावो

\+ + + + +

हे असीम तोमार माझारे भेसे जावो चुपे चुपे

"जाऊँगा जाऊँगा फिर भी मैं जाऊँगा, हे अनन्त, तुम कह भर तो दो तुम मुझे मिलोगे।

सुधाकान्त राय चौधुरी

सुधाकान्त राय चौधुरी कोई बड़े कवि नहीं हैं, किन्तु फिर भी उनकी एक कविता 'मुक्तिर खेला' हम पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं। इसमें जेल में रहनेवाले एक कैदी के गहरे भाव चित्रित किये गये हैं

रुद्ध मम चित्त नित्य काँदे बन्दीशाले
तोबु वातायन-द्वार-पथे नव प्राते
जे आलोक जागे पूर्वदिगन्तेर भाले
आभासमानि तार लागे आसि मोर माथे।
पिन्जरे रागिया मोरे सङ्कीर्ण सीमाय,

केनो सुदूरेर पाने दृष्टि मोर टाना,
केनो चित्तपाखि जेथा क्रान्ति ते झिमाय
अरण्येर विहगेर गीतध्वनि आनो।

इत्यादि

'बन्दीशाला में मेरा रुद्धचित्त नित्य रोता है, फिर भी रोज सबेरे जँगले के रास्ते से जो रोशनी पूर्व क्षितिज के ललाट में जागती है उसकी आभा आकर मेरे सिर पर लगती है। मुझे संकीर्ण सीमा में पिंजरे में रखकर क्यों सुदूर की ओर मेरी दृष्टि को खींचकर तरसाते हो? जहाँ मेरी मन चिड़िया थककर सोती-सी है, वहाँ जंगली चिड़ियोंकी गीतध्वनि क्यों लाते हो? मैं तो पथरीले दुर्ग में बन्दी हूँ, फिर मेरे श्रवण के द्वार में बारबार मर्म का उद्दाम गीत की पुकार से खटखटाते हो, और इस प्रकार हृदय में दुरन्त दुर्वार मुक्ति का वेग ला देते हो?"

जेल पर बहुत-सी कवितायें लिखी जा चुकी हैं किन्तु इसमें बन्दी के अन्तर का गहरी वेदना को भाषा दी गई है।

एक और कवि की कविता देकर हम इस दौर को समाप्त करते हैं।

सुरेन्द्रनाथ मैत्र

सुरेन्द्रनाथ मैत्र की इस कविता का नाम 'वात्सल्य' है, भाषा तथा छन्द में यह रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से ओतप्रोत होते हुए भी इसकी कल्पना में नवीनता है। हम केवल पहिला *stanza* उद्धृत करेंगे, बाकी का अनुवाद कर देंगे।

खेला घरे शिशु खेला करे
धूलिर फाटल-मेघे केनो चाँदिमार मुख भरे
हासि ज्योत्स्ना भरा मुख तार

सैकड़ों समस्यायें रवीन्द्रनाथ की अनुभूतिशील वीणा को बार बार छू गई है। जिन कवियों को हमने रवीन्द्रनाथ के बाद गिनाया है वे भी इन विश्वव्यापी समस्याओं के महाप्लावन से न बच सके, किन्तु फिर भी उन पर उनका विशेष प्रभाव पड़ा यह कहने के लिये कोई कारण नहीं। बात यह है "बंगला साहित्य में अब तक मुख्यत *idealism* (भाववाद) का ही बोलबाला रहा, बंकिम की कल्पना में एक बड़े *ideal* का *sentiment* है, रवीन्द्रनाथ की कल्पना में *Real* (वस्तु) तथा *ideal* (भाव) की एक समन्वयचेष्टा है, और जिनको हम भारतीयऔपन्यासिकों में सबसे ज्यादा प्रगतिशील तथा क्रान्तिकारी समझते हैं वे भी विश्लेषण करने पर वस्तुवादी (*realist*) नहीं पाये जाते, बल्कि उनके उपन्यासों में *Real* (वास्तविकता) का *emotional* (संवेदनमय इसलिये आत्मतान्त्रिक या *subjective*) रूप मिलेगा।"+ मोहितलाल ने इसके बाद लिखा "बंकिमचन्द्र की कल्पना में वास्तविकता (*real*) एक बाधा के रूप नहीं थी, उनकी कल्पना थी सम्पूर्ण निरंकुश और निरापद, रवीन्द्रनाथ की कल्पना में वास्तविकता रूपान्तरित हो गई है, मानो वास्तविकता को वास्तविकता ही लुप्त हो गई है शरत् चन्द्र की काल्पन्य-वास्तविकता की समस्या जटिल हो चुकी है, वास्त विकता के लिये एक प्रबल आवेग की सृष्टि हुई है। इस त्रिधारा से शायद बंगला साहित्य का वस्तुवाद खतम हो गया। इसके आगे जो साहित्य होगा उसमें वास्तविकता के साथ वास्तविक रूप से निपटना पड़ेगा।"

कल जो आधुनिक था आज वह

आधुनिक शब्द एक तुलनात्मक शब्द है, जो चीज कल आधुनिक थी आज उसका प्राचीन कहलाना स्वाभाविक है। इसमें

+ देखो आधुनिक बंगला साहित्य पृ २७०

रोने, पीटने, लड़ने या सिर धुनने की जरूरत नहीं। सच बात तो यह है इसमें हमें खुशी ही मनानी चाहिये। "कभी उन्नीसवीं सदी भी तो आधुनिक थी, किन्तु बीसवीं सदी में उसकी वह आधुनिकता मान्य कैसे हो सकती है? फलस्वरूप जो भी प्राचीन संस्कार युगधर्म के पैरों में बेड़ी डालकर उसकी गति को कुंठित करता है उसे कुसंस्कार आख्या भी दी जा सकती है, और गति के पथ को रुद्ध करने के कारण वह निन्दनीय तथा वर्जनीय है। हमारे मन की पटभूमि में विभिन्न संस्कारों के जरिये से युग-युग तक जो कुसंस्कार पुञ्जीभूत हुए हैं उनके प्रभाव से छुटकारा पाना कठिन हो जाता है। सीमित संस्कारों के कुहरे में ढके हुए साहित्य-रूप का जो विकृत रूप हमारी आँखों के सामने आता है उसीकी पूजा में हम तन्मय हो जाते हैं, इस प्रकार हम अपनी मोहनिद्रा पर शान्त-समाहित अवस्था समझने का भ्रम कर डालते हैं।" (१)

आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य में उसके ध्येय, आधेय तथा रूप में परिवर्तन होना अनिवार्य है। फिर भी इस अनिवार्य भवितव्यता को कभी के क्रान्तिकारी और उस समय के बड़े-बूढ़ों ने रोकना चाहा है, फलस्वरूप एक संघर्ष, तूफान तथा धावा की मारकाट शुरू हो गई है। यह एक अजीब बात है कि जिस क्रान्तिकारित्व या विचार स्वातन्त्र्य की बदौलत वे साहित्य में एक नव युग के प्रवर्तक हुए, उसीका अवलम्बन कर जब दूसरे उनसे भी आगे जाना चाहते हैं तो वे विधिनिषेधों की एक चीन की दीवार खड़ी कर उन्हें रोकते हैं, और जब इस पर भी वे नये मनचले नहीं मानते तो उन्हें तरह-तरह से गालियाँ भी दी जाती हैं। "यहाँ तक कि लेख के चरित्र को छोड़कर लेखक के चरित्र पर हमले किये जाते हैं।' एक नवीनपंथी बंगाली समालोचक ने लिखा है—

"राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

(१) देखो प्रमेन्द्र विश्वास—आधुनिक बांला गद्य

थे भी एक जमाने में अर्वाचीन समझे जाते थे। आधुनिकता के अपराध में उस जमाने में उनके विरुद्ध निन्दा होती थी, उनको बहुत से सामाजिक निर्यातन सहने पड़े। बंकिमचन्द्र, माईकेल, नवीनचन्द्र आदि को सामाजिक निर्यातन का सामना करना पड़ा था किन्तु निर्यातित होने का दुख एक है और प्राचीन होने का दुख दूसरा है। अभी हाल में रवीन्द्रनाथ के सम्बन्ध में एक ऐसी ही शोकप्रद घटना घटी है। जो नारा दिया जा रहा है वह गलत है। रवि बाबू का इस बात पर अभिमान होना स्वाभाविक है कि अब उनका नाम लोग नवीनों के बही से काट दे रहे हैं, इस अभिमान को हम समझते हैं किन्तु रवीन्द्रनाथ के चेलों के युक्तक्रम का उत्कम हम नहीं समझते। रवि बाबू ने नवीन का विजयगान किया है, उसके लिये उनको गालियां भी यथेष्ट दी गई, किन्तु आज यदि उन्हीं को प्राचीनता के शिविर में ढकेल दिया जाय तभी तो हम यह कह सकते हैं कि नवीनता की पुकार सत्य है। बड़े भारी आधुनिक तथा विद्रोही शरत्चन्द्र प्राचीन की श्रेणी में जाकर मरे यह तो उनके विप्रदास की परिणति से ही स्पष्ट है। फिर भी इसमें रोने धोने की बात क्या है यह हमारी समझ में नहीं आती। यदि प्राचीन ही सब जगह पर अपना अधिकार रक्खें तो नूतन को जगह कहाँ मिलेगी। फिर तो हमें सबसे पहिले जीवविज्ञान को झूठा करार देना पड़ेगा यदि पिता ही चिरकाल तक मौजूद रहे तो सन्तान की जरूरत क्या है? फिर यदि पुत्र हूबहू पिता की ही तरह नहीं हुआ तो इस पर हम ढाढ मार रोने क्यों लगेंगे। फिर मनुष्यावतार का क्यों मीनावतार को ही पानी चढाने से काम चल जाता।"

अति आधुनिक साहित्य पर आक्षेप

अति आधुनिक साहित्य पर तरह-तरह के आक्षेप किये गये हैं। कहा जाता है कि अति आधुनिक साहित्य द्वाग-साहित्य है, प्राचीन साहित्य रामायण है तो यह कामायण है। अति आधुनिक कविता

ो कामोन्मीपक तथा शरीर की पूजा करनेवाली वासनाकलुषित भी
दा गया है। मैं समझता हूँ यह एक बिल्कुल झूठी तथा बेतुकि
ात बात है। बाइबिल, रामायण, महाभारत से आज की कविता
अधिक अश्लील है यह कहना गलत है। बँगला में जो कृत्तिवास की
रामायण या काशीरामदास का महाभारत है उन्हें कोई भी
moralist अपने लड़के को दे नहीं सकता। सच बात तो यह है कि
आज की अश्लीलता में कला का पुट है, किन्तु प्राचीनों में तो केवल
नग्न, वीभत्स, अश्लीलता है। रहा यह कि अति आधुनिक साहित्य
में शरीर को उसका उचित स्थान दिया गया है, हाँ कहीं-कहीं कुछ
अति भी हुई है यह मैं मानता हूँ, और यह स्वाभाविक ही है।
आधुनिकतम मनोविश्लेषण शरीर और मन की एकमेवाद्वितीयता
की ही दलील को पुष्ट करता है। ऐसी हालत में शरीर पर से आँख
हटाकर कल्पना की धूमिल रंगीन धरा पर विचरण करना कभी
वाञ्छनीय नहीं हो सकता। अवश्य ही दुर्नीति का प्रचार करना
अति आधुनिक साहित्य का लक्ष्य नहीं हो सकता और न है। हाँ,
जिन बातों को अब तक हमारे समाज के नीतिवान साहित्यिकों ने
केवल अस्वीकार करके ही दबा देना चाहा था, किन्तु फिर भी जो
थीं, और जिनका नवीना बराबर हमारे सामने आता रहता था,
उनको अति आधुनिक साहित्य ने सब के सामने लाकर रख दिया
है। यही हमारे बुजुर्गों के निकट दुर्नीति है। अति आधुनिक
साहित्य को वृद्ध बंगाली समालोचकों ने *bathroom literature* भी
कहा है, याने गुसलखाना साहित्य। इस आक्षेप का उत्तर यह है कि
अति आधुनिक अपने गुसलखाने को हमारे प्राचीनों के रसोईखाने से
अधिक साफ-सुथरा रखते हैं इसलिये यह कोई विशेष गाली
नहीं है।

सच बात तो यह है यह सब बातें इसलिये उड़ाई जाती हैं कि
प्राचीन अपनी गद्दी पर कायम रह सकें, और यह विरोध प्रचार है।

विधाता की सृष्टि बनाम कलाकार की

प्राचीनों की तरफ से वकालत करते हुए कवि रवीन्द्र कहते हैं—"विधाता की सृष्टि में जो पुनरुक्ति है वही चिरसत्य है। प्राचीन को लेकर ही विधाता चिरकाल से इस पृथिवी में इन्द्रजाल की रचना करते आये हैं, इस पर यदि उन्हें लज्जा न हो तो ..

बीच ही में बात काटकर नवीन कहता है—"विधाता को भले ही लज्जा न हो, किन्तु मनुष्य को लज्जा है। मनुष्य का साहित्य, शिल्पकला, भास्कर्य, हमेशा नया ही रूप लेता रहा है। प्रागैतिहासिक युग में एक चमेली जैसे फूलती थी आज भी वैसे ही फूलती है, परन्तु फिर भी विधाता की कला में बट्टा नहीं लगता किन्तु उस युग का मनुष्य जैसी तस्वीरें खींचता था आज भी यदि वह वैसी ही खींचे तो आज उसके लिये लज्जा की कोई सीमा न रहे, प्रतिदिन नई सृष्टि करने में ही उसकी कला की सार्थकता है।"

नवीन प्राचीन का कितना ऋणी

हमारे बुजुर्ग जब सभी बातों में हार जाते हैं तो वे कहते हैं आखिर यह तुम्हारा अति आधुनिक साहित्य आया कहाँ से, आखिर तुम्हारे बाप तो हम ही हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऋण है, किन्तु ऋण कितना? फिर यदि आज के साहित्यिक उन्नीसवीं शताब्दी के साहित्य के ऋणी हैं तो क्या वे किसी और के ऋणी नहीं हैं। कविवर कहते हैं वाल्मीकि आये थे तभी उनका आना सम्भव हुआ, नवीन यहाँ पर तड से पूछ बैठता है वाल्मीकि का आना किसकी बदौलत संभव हुआ। फिर नवीन स्वयं ही कहता है 'बच्चा माँ से चलना सीखता है, किन्तु चलता है वह अपने ही जोर से, जिस रहस्य की खान से आदिम कवि ने प्रेरणा पाई थी उसीसे अति आधुनिक प्रतिभाशाली कवि भी प्रेरणा पाता है। हम अर्वाचीन काल के गर्भ से आये हैं इसे हम अस्वीकार नहीं करते,

किन्तु माँ के गर्भ से बेटा निकला है केवल इसी तत्त्व पर यदि मा बेटे को हमेशा चलाना चाहे तो वह एक विभ्राट का रूप धारण करे। भूतकाल मनुष्य की अवचेतना (*subconscious*) में रहे तो ठीक है, यही उसका यथार्थ स्थान है किन्तु इसके बजाय कि पर्दे के पीछे से चुपचाप अपना भी प्रभाव डाले वह हमारी सारी चेतना को ही आच्छन्न कर ले यह एक भयकर बात ही नहीं विपद्विपाक होगा। यदि रवीन्द्रनाथ को समझने के लिये ईश्वर गुप्त, और ईश्वर गुप्त को समझने के लिये काशीराम दास को और काशीराम दास को समझने के लिये विद्यापति और जयदेव को, फिर इनको समझने के लिये अशोक की शिलालिपि पढनी पडे तो बस हो चुका" †

साहित्य में चिरन्तन सत्य !

साहित्य में तथा सर्वत्र इस बात के लिये अधिकतर मारकाट हुई कि गद्दीदारों ने हमेशा मुहम्मद की तरह यह दावा किया कि आखिरी पैगम्बर ये ही हैं, उन्होंने जिस सत्य को पा लिया यही सत्य का चरम तथा परम विकास है। यही तो गलती है, यदि उनके समय में विकास होता था तो क्या वजह है कि उसके बाद विकास न होगा। इस दावे के कारण ही नवीन और प्राचीन में बराबर साहित्य में तुमुल संग्राम हुआ है। शायद यह नवीन और प्राचीन, गद्दीदार और गद्दी के अधिकारी का संग्राम ही चिरन्तन सत्य है।

मध्यवित श्रेणी का नहीं जनता का साहित्य

हम कई बार लिख चुके हैं कि बंकिम कहिये, माइकेल कहिये द्विजेन्द्रलाल कहिये, रवीन्द्र कहिये इनमें से सभी मध्यवित श्रेणी के साहित्य के रचयिता थे। उन्हीं के *sentiments*, *ideal* या *reality*

† यह नवीन श्री प्रेमेन्द्र विश्वास है

ही उनका उपजीव्य था। एक नवीन साहित्यिक की भाषा में सुनिये "साहित्य अब तक धनी तथा विलासियों की जयगाथा से परिपूर्ण था। अब राजे नवाबों प्रशस्ति तथा कहानी से ही उसका काम चलता था। यद्यपि आज जनता का भी वहाँ स्थान होने लगा है, किन्तु इतने ही से हम सन्तुष्ट नहीं हो सकते, हमें इनसे भी नीचे उतरकर जहाँ अपमान और अत्याचार हो रहा है उन सर्वहाराओं (*proletariat*) में जाना पड़ेगा। आज दुनिया के कारखाने और जमीनों के मालिक एक तरफ हैं, वे हैं पूँजीपति और ताल्लुकेदार दूसरी तरफ हैं किसान और मजदूर, ये सर्वहारा हैं। यह श्रेणी संग्राम आज बहुत ही स्पष्ट है और नजदीकी चीज है। कुछ नहीं यदि जनसंख्या का अध्ययन किया जाय तो ये ही देश, ये ही जाति हैं। साहित्य का काम अब यह होगा कि वह इन किसान मजदूरों की सामाजिक तथा राष्ट्रीय चेतना को जगावे। वही साहित्य वास्तव में राष्ट्रीय साहित्य होगा।" नवीन युग के नवीन समालोचक फिर कहते हैं—"यह जो साहित्य है, इसमें सम्भव है त्रुटियाँ हों, रहें। युग युगान्तर के बंधन को एक दिन में तोड़ने चले हैं, कुछ तो टूटेगा ही। सीमित संस्कारों के संकीर्ण दायरे में शान्ति भी है शृंखला भी किन्तु वहाँ वह जीवन की चंचलता ही कहाँ और मुक्ति का आनन्द कहाँ?"

वास्तविक परिस्थिति

ऊपर जो कुछ कहा गया यह समालोचना मात्र है, सच बात तो यह है अति आधुनिक बंगला साहित्य अभी तैयार हो रहा है। इसमें सन्देह नहीं वह नई चीज है। एक जमाने में अर्थात् बीस पचीस वर्ष पहिले रवीन्द्रनाथ को अधिक से अधिक अपनाना ही बंगला लेखकों तथा कवियों का आदर्श था, किन्तु अब उनसे अधिक से अधिक अलग हटना ही मानों बहुतों का आदर्श हो रहा है। इस प्रयास में कुछ लोगों ने अति कर दी है, नतीजा यह है वे निस

बातें में रचना चाहते थे वे इसीके शिकार हो गये हैं। वे कृत्रिम हो गये, तथा अस्वाभाविक भी हो गये। फिर भी यह एक नवीनता है। बँगला का अति आधुनिक गद्य तथा पद्य साहित्य धीरे-धीरे जनता का साहित्य शायद बने, किन्तु अभी वह जनता का साहित्य नहीं है। ठीक-ठीक कहा जाय तो साहित्य अभी धनी विलासी मध्यवित्त श्रेणी से उतरकर अब निम्नमध्यवित्त श्रेणी में (*lower middle class*) उतरा है। प्रेमेन्द्र मित्र, बुद्धदेव वसु, अचिन्त्यकुमार सेन गुप्त ये तीन अति आधुनिक साहित्य के बड़े विशेषतः शहर की निम्नमध्यवित्त श्रेणी की ग्लानि, दुःख, गरीबी के ही चित्रकार हैं। हाँ, शैलजानन्द मुखोपाध्याय ने कोयले की खानों के कुलियों को लेकर कुछ अत्यन्त शक्तिशाली साहित्य की रचना की है, किन्तु बस। फिर भी ये अति आधुनिक लेखक जब कुलियों को लेकर भी साहित्य रचना करते हैं तो उनको एक-एक व्यक्ति के रूप में देखते हैं, उनकी सामूहिक समस्याओं पर ये कम रोशनी डालते हैं। याद रहे कि बजाय दुर्गेशनन्दिनी के यदि हम कुलीकुमारी को लेकर गल्प, कविता लिखें तो वह अनिवार्य रूप से जनता का साहित्य नहीं होगा, हम यदि प्रेमिका के द्वारा प्रेमी को बजाय चाकलेट के वस्म या फाउन्टेन पेन उपहार रूप में दिलवाने के बदले तेल की जलती या मनोहर नारा दिलवायें तो उससे साहित्य में एक नवीनता जरूर आ जाती है, उसका हम स्वागत करते हैं, किन्तु केवल इन्हीं बातों से वह साहित्य जनता का साहित्य पदवाच्य नहीं हो सकता। जनता का साहित्य वह है जो जनगण की आशा, आकांक्षा, भय, त्रास, हर्ष, आनन्द को रूप दे। दुःख की बात है कि अभी ऐसा साहित्य बँगला में भी कम है। इस बात के लिये दोष हमारे लेखकों का है, वे ऐसी श्रेणी से आते हैं कि वे इन बातों को समझ नहीं पाते, जनता की आत्मा तक उनकी पैठ नहीं है। रवीन्द्रनाथ ने 'चार अध्याय' नामक पुस्तक में राष्ट्रीय चेतना को

चोट पहुँचाकर अपने को पुलिसमैन की श्रेणी में ला दिया है यह एक नवीन समालोचक ने लिखा है, सच है, किन्तु आज के अति आधुनिक लेखक को भी उन्हें राष्ट्रीयता के मामले में चुप्पी के षड़यन्त्र (*conspiracy of silence*) का दोषी बतलाया जा सकता है।

राष्ट्रीयता तथा श्रेणी-संघर्ष

बँगला के अति आधुनिक साहित्य में प्रतिभा का अभाव नहीं है, किन्तु जनता के साहित्य की सृष्टि के लिये जिस साहस की जरूरत है वह शायद आज के लेखकों में प्रचुरता के साथ मौजूद नहीं है। इस साहस के अभाव का एक बाह्य कारण भी है, वह यह है कि सरकार के प्रहार से ये डरते हैं। मैं यह नहीं कहता कि आज का उपन्यास या कविता केवल राजनीति की बाँदी हो जाय, किन्तु यह जरूर है कि आज की जनता के सामूहिक जीवन में राजनीति को एक विशेष महत्त्व प्राप्त है। यह बात साहित्य में झलक जानी चाहिये। यदि ऐसा न हो सका तो कहना पड़ेगा कि साहित्य चाहे कितना भी समृद्ध हो वह वास्तविकता से परे एक कल्पना विलास मात्र है। राष्ट्रीयता की तरह श्रेणी-संघर्ष भी एक वास्तविकता है। मजदूर किसानवर्ग अपनी युग-युग की उदासीनता छोड़कर जिस तरह अपने शोषकों के विरुद्ध विद्रोह में उठ खड़े हो रहे हैं वह आज एक वास्तविकता है। नये युग के लेखक को इस संघर्ष को भी प्रतिबिम्बित करना पड़ेगा। राम, श्याम, यदु, मधु की प्रेमलीला में यह कहीं बढ़कर वास्तविकता है, बल्कि ठीक कहा जाय तो यह वास्तविकताओं में वास्तविकता है। एक वस्तुवादी

हम पहिले देखें कि यूरोप में आधुनिक साहित्य ने अपने सामने क्या काम रक्खे हैं, श्री अजितकुमार चक्रवर्ती ने इनको यों गिनाया है—

(१) सामाजिक न्याय—समाज के अन्तर्गत प्रच्छन्न या प्रकट अन्याय तथा कथित उच्चश्रेणी के सर्वसंशोधन तथा उत्पीडन के प्रति विद्रोह। विक्टर हूगो ने अपने *Les miserables* नामक प्रसिद्ध उपन्यास में इस पर्याय का सूत्रपात किया है, टालस्टाय की कहानियों में भी इसको हम कहीं-कहीं प्रत्यक्ष करते हैं, किन्तु इबसेन के नाटकों में ही आकर हम इसको असली रूप में पाते हैं। उदाहरण स्वरूप *Pillars of Society* लिया जाय, इसमें कान्सल वनिक अपने पापों का बोझ दूसरों पर कितनी ही चालाकी तथा फरेबों के द्वारा लादने की व्यर्थ चेष्टा करता रहा। आधुनिक समाज के स्तभों की नींव इसी प्रकार दुर्बल है। बर्नार्डशा तथा गाल्सवर्दी इसमें लगाही हैं।

(२) समाजविज्ञान, जीवविज्ञान आदि के नये नये आविष्कार कला के वाहन बनाकर दिखलाये गये हैं। जैसे एक बात लीजिये *heredity* याने वंशानुक्रम, इसको अवलम्बनकर इबसेन का *Ghost*, हौप्टमैन का *Conflagration*, पिनेरो का *Profligate*, आस्कार वाइल्ड का *Lady Windermere's Fan* लिखा गया है।

(३) पाप का विश्लेषण—अस्वाभाविक (*abnormal*) अस्वस्थ (*pathological*) तथा प्रतिसामाजिक (*anti social*) अपराधों का विश्लेषण। इस श्रेणी में *Emile Zola* आते हैं, इनसे भी बढ़कर हैं डास्टयवस्कि का *Crime and Punishment* और *The Idiot* उपन्यास, स्ट्रीन्डबर्ग का *Father*, *Dance of Death* हौप्टमैन का *Colleague Krampton*, *Reconciliation*, बर्नार्ड शा का *Mrs Warren's profession* बियो का *Damaged goods*, *maternity* आदि।

(४) श्रेणी-संघर्ष—गाल्सवर्दी, हौप्टमैन, बर्नार्ड शा आदि

साहित्य का स्थान किस ओर है। अब हम अति आधुनिक बँगला कविता का कुछ उदाहरण पाठक के सामने उपस्थित करेंगे।

मोहितलाल मजुमदार

मोहितलाल मजुमदार बँगला के अच्छे कवि तथा समालोचक हैं, उनको शायद हम इस दौर में स्थान न देकर इसके पहिले के दौर में ही पेश करते, क्योंकि रवीन्द्रनाथ से स्वतन्त्र होने की चेष्टा करने पर भी वे उसी के दायरे में रह गये हैं। उन्होंने एक कविता 'कालापहाड' नाम से लिखी है, वह निःसन्देह एक अति आधुनिक कविता है। इस कविता को यदि हम अंग्रेजी में अनुवाद करते तो इसका नाम *iconoclast* देते, पाठक को मालूम होगा कि कालापहाड एक प्रसिद्ध मूर्तिभंजक था। कवि ने कालापहाड को एक कट्टर मौसुस्लिम चित्रित न कर एक क्रान्तिकारी तथा कुसंस्कारों के विरुद्ध जेहाद करनेवाला करके चित्रित किया है। कालापहाड कवि के निकट वह शक्ति है जो किसी चीज के अन्दर से पैदा होकर उसकी भलाई के लिये उस पर चोट पर चोट करता है।

> यत्र जाहार बलि जोगाइलो यूपे, युगे-युगे, भयविभल
> जागियाछे तारि वीर सन्तान हुंकारे भरि जलस्थल

'जिसने पुश्त दर पुश्त युग युग तक भयविह्वल होकर यूप में बकरा भेजा आज उसीकी वीर सन्तान जलस्थल को भर कर जगी है। उसके रास्ते में पहाड सिर झुकाकर सिजदा करता है, उसके कटाक्ष से सूर्य अस्त हो जाता है, उसके खड्ग में स्थिर बिजली है, उसके आने से जो धूल उडती है वही मानो उसकी ध्वजा है और वह एक बादल की तरह है। लो वह आ रहा है, दुन्दुभि कड्कड गडगड-गडगड़ बज रही है, क्या इतने दिनों बाद सुरासुरजयी

पूनामिनीमूले हेमतेनस मकार करे आगमार

"पाषाण पुरी की सिटकनियाँ दूर से उसका हुंकार सुनकर खुल जाती हैं, पूजा की वेदी के सोने के बर्तनों से आगमन की झंकार निकलती है। विराट मन्दिर के अंगी कन्धे स्वयं निकलकर भाग जाते-से हैं, अँधेरे गह्वर में हाहाकार छा जाता है और मूर्ति के पत्थर आप से आप टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं। पुजारी पट्टे भट्टे उतार-कर आँगन में पटकनी खाकर गिर पड़ते हैं। सुनो वह नगाड़ा बजाते हुए आ पहुँचा कालापहाड़।"

कविता दीर्घ है, किन्तु फिर भी हम कुछ और *stanzas* देंगे।

"अकाल उठे हुए बादल की तरह वह कालरूपा कालापहाड़ आ रहा है, डाकिनियों मुंड का मुंड चल रही हैं, उसके गले में कंकालों का हार है। वह रक्त को शोषणकरनेवाली पाप की विभीषिका, प्राण को मिहरित करनेवाला मन्त्रगान, अन्धे की आरती तथा प्रदीप मान मन छुड़ाने आ रहा है। वह महाभयहारी, देवारि, मानव युगावतार है। वह शरीर का छाया शृंखल मुक्त कर देगा तथा पत्थरों के बोझ को चूर्ण कर देगा।"

"करोड़ों आँखों से निकले हुए आँसुओं का झर्ना पत्थर के पैरों पर गिरा, पत्थर उससे घिस गया किन्तु अन्धे की आँख न खुली जीव की चेतना का जड़ के ऊपर आरोप करते हुए कितनी ही चाँदनी रातें अँधेरी हो गईं, रक्तलोलुप लाल रसनाओं पर अपने ही मगीर्थे अमृत का प्याला समझकर दिया लिया। आज उसका अन्त हो गया, मोह का अवसान हो गया, वह देवताओं को दमन करनेवाला युगावतार आ रहा है। उसकी दुन्दुभि तथा नगाड़े बज रहे हैं। आ जो रहा है वह कालापहाड़।"

"अपने हाथों में दोनों पैरों में बेड़ी पहिनकर कमजोर जिसकी पूजा करते हैं, तथा हाथ जोड़कर दुआएँ माँगते हैं, आज उसकी अहो कैसी दुर्गति हो रही है। पिनाक कहाँ है, डमरू कहाँ है और

साहित्य का स्थान किस ओर है। अब हम अति आधुनिक बँगला कविता का कुछ उदाहरण पाठक के सामने उपस्थित करेंगे।

मोहितलाल मजुमदार

मोहितलाल मजुमदार बँगला के अच्छे कवि तथा समालोचक हैं, उनको शायद हम इस दौर में स्थान न देकर इसके पहिले के दौर में ही पेश करते, क्योंकि रवीन्द्रनाथ से स्वतन्त्र होने की चेष्टा करने पर भी वे उसी के दायरे में रह गये हैं। उन्होंने एक कविता 'कालापहाड़' नाम से लिखी है, वह निःसन्देह एक अति आधुनिक कविता है। इस कविता को यदि हम अंग्रेजी में अनुवाद करते तो इसका नाम *iconoclast* देते, पाठक को मालूम होगा कि कालापहाड़ एक प्रसिद्ध मूर्तिभंजक था। कवि ने कालापहाड़ को एक कट्टर नौमुस्लिम चित्रित न कर एक क्रान्तिकारी तथा कुसंस्कारों के विरुद्ध जेहाद करनेवाला करके चित्रित किया है। कालापहाड़ कवि के निकट वह शक्ति है जो किसी चीज के अन्दर से पैदा होकर उसकी भलाई के लिये उस पर चोट पर चोट करता है।

> वश जाहार बलि जोगाइलो यूपे, युगे-युगे, भयविभल
> जागियाछे तारि वीर सन्तान हुंकारे भरि जलस्थल

'जिसने पुश्त दर पुश्त युग युग तक भयविह्वल होकर यूप में बकरा भेजा आज उसीकी वीर सन्तान जलस्थल को भर कर जगी है। उसके रास्ते में पहाड़ सिर झुकाकर सिजदा करता है, उसके कटाक्ष से सूर्य अस्त हो जाता है, उसके खड्ग में स्थिर बिजली है, उसके आने में जो धूल उड़ती है वही मानों उसकी ध्वजा है और वह एक बादल की तरह है। लो वह आ रहा है, दुदुंभि कड़कड़ गड़गड़-गड़गड़ बज रही है, क्या इतने दिनों बाद सुरासुरजयी वह युगावतार—कालापहाड़ उठा ?"

> पाषाण पुरीर खिल खुलि जाय, दूर हते सुनि हुं हुकार

पूजारेगीमूले हेमन्तेनम मन्कार करे आगकार

'पाषाण-पुरी की सिटकनियाँ दूर से उसका हुङ्कार सुनकर खुल जाती हैं, पूजा की वेदी के सोने के बर्तनों से आतंक की झंकार निकलती है। विराट मन्दिर के नगाड़े करके स्वर निकलकर भाग जाते हैं, अन्दर गह्वर में हाहाकार छा जाता है और मूर्ति के पत्थर आप से आप टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। पुजारी पट्ट कटे उखाड़-कर आँगन में पटकनी खाकर गिर पड़ते हैं। सुनो वह नगाड़ा बजाते हुए आ पहुँचा कालापहाड़।"

कविता दीर्घ है, किन्तु फिर भी हम कुछ और *stanzas* देंगे।

"अकाल उठे हुए बादल की तरह वह काला-सा कालापहाड़ आ रहा है, डाकिनियाँ भूत का झुंड चल रही हैं, उसके गले में कंकालों का हार है। वह रक्त को शोषण करनेवाली पाप की निर्माणिका, शाप को विहरित करनेवाला मन्त्रगान, अन्धे की आरती तथा प्रणेता गान सब हटाने आ रहा है। वह महाभयहारी, वैनाशि, मानव युगावतार है। वह शरीर का ढाँचा गला कुछ कर देगा तथा पत्थरों के बोझ को चूर्ण कर देगा।"

"करोड़ों आँखों से निकले हुए आँसुओं का झरना पत्थर के पैरों पर गिरा, पत्थर उससे घिस गया किन्तु अन्धे की आँख न खुली जीव की चेतना का जड़ के ऊपर आरोप करते हुए कितनी ही चाँदनी रातें अँधेरा हो गईं, रक्तलोलुप लोग रचनाओं पर अपने ही मनगढ़ंत अमृत का प्याला समझकर पिया किये। आज स्वप्न अन्त हो गया, मोह का अवसान हो गया, वह रचनाओं को भग्न करनेवाला युगावतार आ रहा है। उसकी दुन्दुभि तथा नगाड़े बज रहे हैं। आ जो रहा है वह कालापहाड़।"

"अपने हाथों से गढ़ी मूर्तियों में बेड़ी पहिनाकर जिसकी पूजा करते हैं, तथा हाथ जोड़कर दुआएँ माँगते हैं, आज उनकी अहो कैसी दुर्गति हो रही है। पिनाक कहाँ है, डमरू कहाँ है और

से मानव मरियाछे
तोमार परशे मृतेरा लोभुक प्राण

"मरे हुओं के सागर की चारों दिशाओं में आज हम जमा हैं, हमने गाढ़ अन्धकार के तीर में भीड़ की है, हम अनाहार से रो रहे हैं। हे प्रभु रोटी नहीं है, मछली का टुकड़ा नहीं है। तुम आओ, आओ, इस मृत के सागर में पैदल चलकर पार होकर आओ। अँधेरे में भास्वर देह से खड़े हो जाओ। भूखों को रोटी दो पानी दो, प्रभु प्रेम दो, अपना अमर प्रेम। एक जमाने में तुमने मनुष्य का रूप धरकर मनुष्य को धन्य किया था। व मानव जिनमें तुम पैदा हुए थे मर गये हैं, तुम्हारे स्पर्श से मरे हुओं को जीवन मिले।"

इस कविता का भाव तथा भाषा सब रवीन्द्र-सत्येन्द्र से पृथक है। स्वप्नलोक की अस्पष्टता इसमें नहीं है, इसमें है तेजस्वी स्पष्ट वास्तविकता। जरा कवि के साहस को देखिये, वे प्रेम के देवता से पुष्पक विमान या गरुड़ पर न आने को कहकर पैदल आने को कहते हैं। फिर उनसे शिकायत यह नहीं करते कि आजकल की कालेज किशोरियाँ प्रेम नहीं चाहतीं मोटर चाहती हैं, बल्कि कहते हैं रोटी नहीं है, मछली का टुकड़ा नहीं है। फिर उनसे प्रेम नहीं माँगते बल्कि माँगते हैं रोटी, पानी, फिर सबसे पीछे प्रेम मांगते हैं। *Man does not live by bread alone* की कैसी नई व्याख्या है।

कहा जा सकता है कि यह कोई कविता नहीं है। निश्चय है। मैंने पहिले ही कहा एक नई धारा या *spirit* पैदा हो चुकी है, किन्तु जब तक कोई महान प्रतिभा पैदा नहीं होती जो अपनी आत्मा के अन्दर इस नई धारा को परिपाक कर उसको एक कलामय रूप देने में समर्थ हो तब तक यही सन्देह होता रहेगा। फिर रवीन्द्रनाथ को भी तो पूर्ण तरीके से समझने में समय लगा था।

रवीन्द्रनाथ मैत्र

श्री रवीन्द्रनाथ मैत्र कुछ बड़ी मार्मिक कहानियों के लेखक थे

रूप से प्रसिद्ध थे, किन्तु उनकी कविताओं की रचना में भी हम एक आधुनिक की आत्मा को स्पन्दित होते हुए पाते हैं। वे बड़े जोरों से लिखते हैं।

> धरणीर बुके
> धूलाय लभेछि जन्म, देवत्वेर नाहि अहमिका
> सब अङ्गे मारि धूलि, आँकि भाले पङ्क जयटीका।
> पथ बाहि चलि गर्व-सुखे
> स्वर्गपाने तुलि अश्रुमिश्र समुज्वल मुखे।

'धरणी की छाती पर धूल में हमारा जन्म हुआ है, देवत्व की अहमिका मुझमें नहीं है। सब अङ्गों में धूल लिपटा लेते हैं, ललाट पर कीचड़ की जयटीका लगाते हैं। हम गर्व में तथा सुख से रास्ते में चलते हैं, स्वर्ग की ओर हमारा सिर उठा रहता है और मुख अश्रुमिश्र समुज्वल होता है।'

> आमरे यारा दूरे हाने
> जाहारा खाँड़ाय दूरे नाहि चाहि ताहादेर पाने
> माँडाये माटिर परे स्वर्गेर करे अभिनय
> तारा—मोर नय, केह नय।

'जो लोग दूर से खड़े-खड़े घूरते हैं हम उनकी ओर नहीं देखते। जो लोग दूर खड़े हैं हम उनकी ओर नहीं देखते, जो मिट्टी पर खड़े रहकर स्वर्ग का अभिनय करते हैं वे हमारे नहीं हैं, नहीं वे कोई नहीं होते।'

कवि वेदना से ही अपनी अनुप्रेरणा लेते हैं, वे कहते हैं।

> धरणीर जन्मतिथि हते
> मानुष भासिया चले दुःखज्वाला वेदनार स्रोते

शंका ओ संशय द्विधा लज्जा भय संघाते फेनिल

\+ + + +

जतो वेदनार हाहा डुबे जाय केह नाही मोने
आमि कान पाति
सुर खुँजि तारि माझे, ताइ दिये गान मोर गाँथि

'धरणी की जन्मतिथि से ही मनुष्य दुःख ज्वाला की वेदना के स्रोत में बह चलता है, वह स्रोत भी ऐसा है कि शंका, संशय, द्विधा, लज्जा तथा भय के संघात से फेनिल। वेदनाओं के कितने हाहाकार डूब जाते हैं, कोई उन्हें नहीं सुनता, मैं कान टालकर उन्हें सुनता हूँ, उसमें सुर खोजता हूँ तथा उसीसे अपना गान पिरोता हूँ।'

कवि मनुष्य को रक्त, मांस, अस्थि तथा भ्रान्ति में बना पाते हैं। थोड़ा बहुत इस जीवन में सुख शायद होता, किन्तु उसके बीच में आकर मृत्यु को बैठा दिया गया है। मरीचिका के लिये दौड़ जारी है, कवि भी दौड़नेवालों के हाथ में हाथ डालकर दौड़ रहे हैं। कवि ने कभी कोई गान नहीं सुना, आनन्द कहाँ है उसका सन्धान नहीं पाया है, देवतागण लाखों पहरेदारों के बीच में लोहे की दीवारों से घिरे रहकर भँवरहीन मन्दाकिनी के किनारे चिरश्याम पारिजात के नीचे बैठकर आनन्द अमृत का जो दौर चलाते हैं कवि उसके स्वाद से परिचित नहीं। युग के बाद युग आता है, किन्तु कवि वही एक भाषा तथा अपूर्ण अतृप्त साध पेश करते हैं। चारों दिशायें प्रज्वलित पिपासा के हाहाकार से भर उठती हैं। कम्पमान करों से प्याला गिर पड़ता है, इस पर कवि आर्तनाद करते हैं, पानी समझकर भट्ठियों में पागल बालू खोजते हैं। उसीके ताल पर छन्द कवि बनाते हैं, उसीमें गान बनाते हैं।

निस्सन्देह यह एक नया जगत है।

रवीन्द्रनाथ मैत्र से बँगला साहित्य को बड़ी आशायें थीं, किन्तु [illegible] साल की उम्र में ही उनकी मृत्यु हो गई। ऊपर की कविता केवल एक उच्छ्वास भर न थी, उन्होंने बराबर अपने जीवन में उन्हीं की सेवा की जिनको कोई बात भी नहीं पूछता और उन्हीं के विषय में लिखा। जिन पिछड़े हुए पतितों की अवरुद्ध वेदना भीतर-भीतर दम घुटकर रह जाती थी, उनकी इस वेदना को भाषा देकर सुलगा देना उनकी लेखनी की विशेषता है।

प्रेमेन्द्र मित्र

प्रेमेन्द्र मित्र बँगला के बहुत बड़े प्रतिभाशाली कवि तथा औपन्यासिक हैं, इनके सम्बन्ध में एक ज्ञातव्य बात यह है कि काशी में इनका जन्म (१९०४) हुआ। उन्होंने स्वयं ही कहा है।

आमि कवि जतो कामारेर आर कांसारिर आर छुतोरेर
मुटे मजुरेर
—आमि कवि जतो इतरेर

'मैं लोहारों का, ठठेरों का, बढ़इयों का, कुली तथा मजदूरों का कवि हूँ, मैं सब इतरों का कवि हूँ।"

बुद्धदेव वसु ने प्रेमेन्द्र के सम्बन्ध में जो लिखा है वह अनुधावन के योग्य है। वे लिखते हैं 'प्रेमेन्द्र कविता उनकी स्वकीयता के द्वारा उज्ज्वल है। उनकी कविता दुनिया की छोटी से छोटी चीज़ से लेकर मनुष्य के भाग्यविधाता के चरणप्रान्त तक विस्तृत है, पुराना अखबार, भाड़े के मकान से लेकर सीमाहीन आकाश में घूमते हुए ग्रह नक्षत्रों तक उनकी गतिविधि है। उनकी रचना शैली ओजशीला है, भाव प्रगाढ़ता व गतिवेग से वह स्वयं ही दीप्त हो जाती है। मनुष्य की व्यर्थता, हीनता तथा दुर्बलता के सम्बन्ध में गम्भीर चेतना ही इनके काव्य का मूल-सूत्र है। मनुष्य के घर में उनका देवता जन्म लेता है, किन्तु घटनाओं के संघात से ज्ञात होता है कि देवता यहाँ नहीं है।

आज

विकृत सुधार फाँदे बन्दी मोर भगवान काँदे

'आज विकृत भूख के जाल में कैदी होकर मेरा भगवान् रोता है।'

आधुनिक गणतान्त्रिक भाव उनकी कविता में स्पष्ट है। उनकी एक प्रसिद्ध कविता 'महासागरेर नामहीन कूले' उद्धृत की जाती है—

महासागरेर नामहीन कूल
हतभागादेर बन्दरटीते भाई,
जगतेर जतो भाङा जाहाजेर भीड।
माल बये बये घाल होलो जारा
आर जाहादेर मास्तुल चौचिर
आर जाहादेर पाल पुड़े गेलो
बुकेर आगुने भाई
सब जाहाजेर सेई आश्रय-नीड

'महासागर के नामहीन किनारे में अभागों के बन्दर में दुनिया के जितने भी टूटे जहाजों की भीड़ है। जो जहाज माल ढोते ढोते घायल हो गये, जिनकी मस्तूलों के धुर्रे उड़ गये, जिनके पाल सीने की आग में जल गये उन सब जहाजों का यह आश्रय-नीड है।'

'बड़े-बड़े अथाह कालेपानियों को मथ कर, नमकीन पानी में डूबते या नहाते, डूबे पहाड़ों के धक्कों को निगले हुए तथा आँधी से झकझोरे हुए जितने लगेजान जहाज बखास्त हो चुके हैं तथा जिनके अस्थिपंजर ढीले हो चुके हैं उन सब बेकार बेमसरफ जहाजों की भीड़ इस अभागों के बन्दर में है।'

'भाई दुनिया में बड़ी कड़ी चौकीदारी है यहाँ सौदागर भी बड़ा हुशियार है, जिसके पतवार अब पानी में कुछ कर नहीं पाते उन्हें

चुपचाप हट जाना पड़ता है। जिसके कमर का जोर घट गया, जिसकी लकड़ी में घुन लग गया, जिसका कलेजा फट गया या जन्म भर के लिये जो जख्मी हो गया, सौदागर की जेटिया में या गहियों में ढूँढकर जिन्हें कहीं नहीं मिलेगा, उन जहाजों को महासागर के इस नमकीन किनारे पर अभागों के अन्दर में कोई भी पा सकता है। यहाँ वहीं सब टूटे जहाजों की भीड़ है।'

'जिनकी रीढ़ टेढ़ी हो गई और खम्भे टूट गये, कब्जे और कल बिगड़ गये, जिनका सब ठाट जाता रहा, मस्तूल नीचा हो गया, जोड़ खुल गया, छेद के मारे जिनमें अब तैरते रहने की सामर्थ्य नहीं रही उन सब अभागे असमर्थों तथा निर्वासितों की यहा भीड़ है।

सावित्रीप्रसन्न चट्टोपाध्याय

सावित्रीप्रसन्न चट्टोपाध्याय एक ऐसे कवि हैं जो दो युगों की गोधूलि में रहते हैं, कभी उनका कदम इस युग में रहता है तो कभी उस युग में। 'आजो जारा मरे नाई' कविता में वे मृत्यु पर एक अभीतोगरीय दृष्टि डालते हैं। वे मृत्यु को अनिवार्य पाते हैं, हर घड़ी वह जैसे मनुष्य का खून पीने के लिये उद्यत है। ऐसी परिस्थिति म जो लोग जीते हैं कवि उनके ललाट पर अमृत की जयटीका देते हैं। यही तो पुरुषार्थ है—

> आजो जारा मरे नाई, प्रज्वलित मृत्युयज्ञशाले
> समिध संभार व्यस्त, कल्याणलुब्ध निक्षत्र ताले
> जलण होज्या आछे प्रत्यासन्न आह्वानेर लागि,
> दुर्विषह दिवसेर ग्लानि ढाके आर निशा जागि
> किस्मरित नेत्रपाते तारा देखे नव सूर्योदय
> तादेरि निर्भीक कंठे विश्व माग्न लभिये अभय।

आजो आरा मरे नाइ मरिबार सहस्र कारणे,
खुँजिया पेयेछे वाणी विस्मृत एक जीवन धारणे
अकरुण वचनाय अनहेलि गनिछे प्रहर
सहस्र लाञ्छना माझे तुलितेछे हासिर लहर,
मरिया न मरे तारा, अनिवार्य मृत्यु पथगामी
रुधिरात्त चक्रनेमि ताहेरि इङ्गिते जाबे थामि'
आजो आरा मरे नाई, मरिबे ना तारा कोने काले
अमृतेर जयटीका चिराङ्कित ताहादेरि भाले

"आज भी जो लोग नहीं मरे हैं, प्रज्वलित मृत्युयज्ञशाला में समिधि समूह करने में व्यस्त हैं, आँधियों से क्षुब्ध क्षितिज में आनेवाली पुकार के लिये उत्कर्ण हैं। वे असह्य ग्नि की ग्लानि अँधेरी रात जाग कर ढकते हैं। फिर भी आँखों को निस्फारितकर वे नया सूर्योदय देखते हैं, उन्हीं के निर्भीक कंठ से विश्व को अभय प्राप्त होता है।"

"मरने के सहस्र कारण से भी आज जो नहीं मरे, इस विस्मृत जीवन को धारण करने के लिये उन्होंने वाणी खोज पाई है। जब अकरुण वचनायें आती हैं तो वे धैर्य धारणकर पहर गिनते हैं, सहस्र लाञ्छना में वे हँसी की लहर पैदा कर देते हैं, वे मर कर भी नहीं मरते, उनके इशारे से मृत्युपथगामी रुधिरात्त चक्रनेमि ठहर जायगा। जो आज भी नहीं मरे वे कभी भी नहीं मरेंगे, अमृत की जयटीका हमेशा उनके ललाट पर अङ्कित है।"

इसका सारांश यह है कि आधुनिक मृत्यु की वास्तविकता को समझना है, फिर भी यह आशावादी है।'

अचिन्त्यकुमार सेनगुप्त

अचिन्त्यकुमार बँगला के बहुत शक्तिशाली लेखकों में हैं। वे

बंगाल सरकार के न्याय विभाग में नौकर हैं, फिर भी वे साहसी लेखकों में समझे जाते हैं। इनकी शैली तेजस्वी तथा व्यक्तित्व-व्यंजक है, दृढ़ता की द्योतक तथा अनायास है। उपमा, व्यंजना तथा वर्णन में ये सम्पूर्ण स्वतंत्र हैं। ये कवि के अतिरिक्त औपन्यासिक तथा गल्पलेखक हैं। प्रकृति और मानव दोनों से उनका सम्बन्ध है, उनकी कविता में 'प्रकृति प्रकृति के लिये' इस प्रकार की प्रकृति पूजा नहीं है वरन् मानव और प्रकृति को एक ही चीज़ के दो पहलू करके दिखलाया गया है। प्रकृति उनके निकट अर्थमयी इस कारण है कि मानव है। वे कहते हैं—

> आमार पराण मुखर कोरेछे सिन्धुर कलरोले
> प्रभजनेर प्रति पदपाते आमार पराण दोले
> आमार पराने भाई
> कोटी मानवेर अश्रुजलेर जोयार शुनिते पाई
> सूर्येर बुके की भूख जागिछे आमार पराण जाने
> कीटेर पागार अस्फुटतम वेदना आमारे हाने
> आमार पराने भरा
> ए पथचारिणी वसुंधरार अकारण घुरे मरा

इत्यादि

'मेरी आत्मा समुद्र के कलकलनाद से मुखर है, वायु के प्रति पदक्षेप में मेरा हृदय आन्दोलित होता है। अपनी आत्मा में करोड़ों मनुष्यों के अश्रु की बाढ़ सुन पाता हूँ। सूर्य के हृदय में कौन-सी भूख है मेरी आत्मा जानती है, एक कीड़े के डैने की अस्फुटतम वेदना मुझे दुखी करती है। मेरी आत्मा में पथचारिणी वसुन्धरा का अकारण घूमना भरा है। वनानी की दोलन में मेरा व्याकुल प्राण नाच कर उठता है। धान की सभा में मेरा प्राण हरा हो जाता है,

मेरे प्राण में प्रत्येक पुष्प का रंगविरंगा जादू सिहर उठता है, मेरे ही प्राण को निचोड़ निचोड़कर आकाश नील हो गया है। कहीं पर कुछ खाली नहीं रहा, मेरे प्राणों में विश्ववेदना का छत्ता जमा है। दीर्घश्वास की दरिया उसमें आन्दोलित हो रही है, मरुभूमि की शून्यता अन्धकार की कातर व्याकुलता, गिरी हुई कली की व्यथा यहाँ है। मेरे प्राणों में युगान्तर की मृत्यु की निशा मूर्छित है।'

सच बात कही जाय तो इस कविता में कुछ ऐसी बातें हैं जो रवीन्द्रनाथ का स्मरण दिलाती हैं।

अन्नदाशंकर राय

अन्नदाशंकर राय का जन्म उड़िस्या के ढेङ्कानल राज्य में हुआ, विलायत में आइ० सी० एस० पढ़ते समय इन्होंने पहली पुस्तक लिखी। भाषा इनकी विशेष रूप से सुन्दर है, मालूम होता है जैसे एक एक शब्द के पीछे साधना है। साहित्य में ये केवल का नहीं मनुष्यत्व का नारा बुलन्द करते आये। कवि से ये बड़े गल्पकार तथा औपन्यासिक हैं। इनका एक उपन्यास 'सत्यासत्य' अढ़ाई हजार पृष्ठों में समाप्त हुआ है। एक कविता में ये कवि को अपनी तस्वीरों की झोली प्रकृति से भर लेने के निमित्त पुकारते हैं—

> ओरे कवि तोर छविर पसरा
> भरिया लइवि आय
> रसक्रमयी साजियाछे धरा
> वसन्त नाटिकाय
> आज पथे आर जाहा चाय मन
> एतो मिठा लगा भानुर किरण
> पाखिदेर सने करे समीरण
> एतो शीष दिये जाय

'अरे कवि आकर अपनी तस्वीरों की झोली भर लो, वसन्त नाटिका में पृथिवी उत्सवमयी हो रही है। आज जो चाहोगे सो ही मिलेगा, सूर्य की किरणें इतनी मीठी लगती हैं। वन में चिड़ियों के साथ पवन मीठी सेवा जा रहा है+ + + +। कहीं पर एक भी बादल नहीं, सब बादलों ने छुट्टी ले रक्खी है, नावों का इधर से उधर जाना बन्द है इसलिये समुद्र स्थिर है। हमारे इस हरे द्वीप के किनारे पर उसीका पानी आकर छलकता हुआ लगता है, हमारे पैरों में उसीका मुट्ठियों फेना लगता है। पेड़ों के पीले चेहरे पर सोने के रंग का सुनहलापन गोड़ गया है, विदेशी नामवाली पत्तियों ने उसको चूमने के लिये उसको घेर लिया है' इत्यादि

प्रकृति में मनुष्य के हृदयावेगों के आरोप का जो वर्णन है जिसे अंग्रेजी में *pathet c fallacy* कहते हैं हमेशा से कवियों की एक विशेषता रही है। हम चाहें तो इसे प्रकृति में प्राणप्रतिष्ठा कह सकते हैं। सत्य कवि इसमें अपने पहिलेवालों से पीछे नहीं हैं, किन्तु साथ ही वे इस पृथिवी की नरमी मिट्टी तक को बहुत प्यार करते हैं। अतएवकर इसी कविता में कहते हैं—

ए जे आमादेर सेई आन्गिणी
सूर्यमुखी सोनार मेदिनी गर
प्रति तिल चिनि चिनि चिनि
प्रतिटी अङ्गमय।

'यह तो हमारी वही प्यारी सूर्यमुखी सोने की पृथिवी है इसके तिल तिल तथा अंग-अंग को जानता हूँ।'

अजितकुमार दत्त

अजितकुमार दत्त ने प्रेम पर जो सनेट लिखे हैं वे सुन्दर हैं। सनेट लिखनेके लियनो शब्दों की मितव्ययिता तथा सारगर्भता चाहिये वह अजितकुमार दत्त में है, किन्तु फिर भी ▬▬ विषय एक ही

होने के कारण वे कोई बड़े कवि न हो सकेंगे। प्रेम पर लिखी हुई उनकी कवितायें आधुनिक हैं इसमें सन्देह नहीं। एक सनेट म आधुनिक की निक्तता के साथ शुरू करते हैं —

> नाहि जानि तथागत बुद्धेर वचन सत्य किना—
> पुनराय जन्मलाभ आछे किना अदृष्टे आमार
> चार्वाकेर तिक्त वाणी, 'भस्मीभूत ए देहेर आर
> पुनरागमन नाइ', सत्य किना से कथा जानि ना

'मालूम नहीं तथागत बुद्ध का वचन सत्य है कि नहीं, मालूम नहीं फिर से जन्म पाना मेरे अदृष्ट में है कि नहीं, यह भी नहीं मालूम कि चार्वाक की कड़वी बात 'भस्मीभूत इस देह का पुनरागमन कहाँ' सच है कि नहीं। यदि यह जीवन अर्थ, यश या मान के बिना भी कट जाय तो मैं इनके लिये फिर जन्म लेना नहीं चाहता। मैं नये वस्त्र की तरह देह लेकर मोक्ष की आकांक्षा कर पृथिवी में नहीं आना चाहता।'

'मैं इस जीवन में केवल तुम्हारा सुन्दर प्यार चाहता हूँ, मैं तुम्हारा समुद्र की तरह स्नेह चाहता हूँ। मैं कविता में उन्हीं बातों का संग्रह करना चाहता हूँ जिसको किसी ने कभी नहीं कहा, दूसरे भला तुम्हारी बातें किस प्रकार जानेंगे ? इस जीवन में तो तुम हो, तुम रहो, उसके बाद जब मैं मर जाऊँगा तो तुम्हारा प्रेम मेरी कविता में अमर होकर रहेगा।'

कवि को मौलिक रूप में हम रवीन्द्रयुग के कवियों से पृथक कर नहीं सकते, अवश्य उनका शैली मौलिक रूप से भिन्न है। दर्शन (*philosophy*) रवीन्द्रयुग से विभिन्न इस शैली के क्रान्तिकारित्व के कारण हम अजित बाबू को अति आधुनिक समझने के लिये बाध्य हैं। कवि का विषय अत्यन्त व्यक्तिगत प्रेम है, यह वही विषय है जिसे विद्यापति, चण्डीदास, नजरुल ने अप-

नाया था, किन्तु *approach* में नूतनत्व है।

बुद्धदेव बोस

श्री बुद्धदेव बोस शायद इस समय के बँगला लेखकों में सबसे अधिक शक्तिशाली हैं, गल्प, उपन्यास, कविता, नाटक समालोचना सभी क्षेत्र में उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनका एक उपन्यास 'एरा आर ओरा' अश्लीलता के जुर्म में जब्त हो चुका है। इस समय ये 'कविता' नामक कविता विषय पत्रिका के सम्पादक भी हैं। इनकी रचना में इनकी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय पग-पग पर मिलेगा। यह आश्चर्य की बात है कि बुद्धदेव की पुस्तकों का अभी हिन्दी में अनुवाद नहीं हुआ। बुद्धदेव की 'शापभ्रष्ट' कविता बहुत लम्बी है नहीं तो हम उसे यहाँ पर देते, हम 'आर किछु नाहि मोर' नामक उनकी कविता देते हैं, यह एक तरह से कवि की आत्मकहानी है।

आर किछु नाहि मोर। जानि, मोर तरे नहे जयमाल्य
यशेर मुकुट
निन्देर कविरा जतो ज्वालिछे नक्षत्र हये रजनीर
श्यामल-अंचले

'मेरे और कुछ भी नहीं है। जानता हूँ मेरे लिये न तो जयमाला है न यश का मुकुट है। निन्द्य के कवि नक्षत्र होकर रजनी के श्यामल अंचल में विराजमान हैं जहाँ भी मेरा स्थान नहीं है। नील आकाश के नीचे मेरी स्तुति का गान नहीं मुखरित होगा ———नर चित्त के अन्तिर्तीर्थ में मेरा नित्य स्वर्ग नहीं है, मृत्यु का कडुआ कालकूट मेरा परम भाग्य है। मैं जानता हूँ इक्कीसवीं सदी की कोई मनदर्शी मेरी कविता को चाँदनी स्नान बँगले के नीचे नहीं पढ़ेगी।'

'फिर भी जो आज संगीत की लहर हृदय के हिल्

जग रही है वह केवल तुम्हारे लिये है। तुमको जो मैंने सब अंगा मे, मर्म मे, मन म, प्राण मे पाया था, तुमको विरह के स्पन्दमान अन्धकार में तथा मिलन वासर मे पाया था यही बात में आकाश, धरणी, घास को तथा समुद्र के कान म कहना चाहता ह'। इस परिपूर्णता का बोझा अकेले अकेले मुझसे ढोया नहीं जाता इस लिये हजारों मे अपने को लाखों गाने मे बाँटता फिरता हूँ।'

पाठक इस बात को देखेंगे कि यह कविता अचिन्तकुमार दत्त की कविता से विभिन्न नहीं है। मैंने इस अध्याय के प्रारम्भ में कहा है कि कई कारणों से अति आधुनिक भारतीय साहित्य ने अपनी आत्मा को पूर्ण रूप से खोज नहीं पाया है। मार्क्स ने यह जो कहा था कि हमारा काम इस जगत की केवल व्याख्या करना नहीं है, बल्कि उसको बदलना है इस बात को हमारे यहाँ के लेखकों ने अभी नहीं समझा है। हमारा साहित्य इसलिये वास्तविकता के पास आने पर भी वास्तविक नहीं हो पा रहा है। बुद्धदेव बोस में लेखन शक्ति है, सूक्ष्मदृष्टि है, भाषा का ऐश्वर्य है, फिर भी वेम्फ तरह स *ideal world* याने ख्याली दुनिया मे रह से जाते हैं। हमारे ये कवि तथा लेखक उसी श्रेणी से हैं जिससे बँगला के रवीन्द्र-युग के कवि हैं, देश म चलनेवाले भयंकर उथल पुथल को अक्सर ये समझते नहीं, कभी तो उसमे बेखबर रहते हैं यहाँ तक कि उसकी हँसी उडाते भी देखे गये हैं। यह बात एक तरफ रही और दूसरी तरफ शोलोखोव को लेखिये कि डान नदी के स्टेप (*steppes*) मे जो सामूहिक खेती में व्यवहारिक रूप से भाग लेनेवालों म हैं और "टूटी मिट्टी" नामक रूसी उपन्यास के लेखक भी वही हैं। इसको बहुत मे लोग वर्तमान रूस का सर्वोत्तम उपन्यास समझते हैं।

बुद्धदेव में इसी समझ या प्रेरणा का अभाव होने के कारण वे गुमराह होकर अश्लीलता की ओर गये। सौभाग्य से बुद्धदेव उधर से लौट हैं, किन्तु अब भी वे राह खोज रहे हैं। बुद्धदेव

की 'ब्याङ' (मेढक) नामक एक बाजी कविता पाठक के सामने अनुवाद में पेश की जाती है।

"वर्षा में ही मेढक की पाँचों उँगली घी में है। पानी बरसना बन्द हुआ ही है, आकाश तो चुप है, किन्तु मेढकों का एकमात्र लगाया हुआ नारा सुनाई पड़ रहा है। उन्मुक्त कंठ का ऊँचा सुर आदिम उल्लास में बज रहा है, आज तो विच्छेद का डर, न भूख का डर, न मृत्यु का भय है। घने बादल खाम हो गये, स्वच्छ पानी मैदानों में जमा है, उद्धत आनन्द गान से उत्सव का दोपहर कटता है। स्पर्शमय वर्षा आई, नया कीचड़ कितना चिकना है। मेढक मानो स्फीतकंठ वीतस्पृह संगीत का शरीरधारी सम्भ्रम है, अहा यह मेघ की हलकी हरी कान्ति कैसी चिकनी है। मेढक की दृष्टि काँच की तरह स्वच्छ ऊपर की ओर लगी है, अहा जैसे ध्यान मग्न ऋषि की तरह ईश्वर को खोज रहा है। पानी बरसना बन्द हो चुका, दिन खतम हो रहा है, स्तम्भित आकाश में गंभीर बन्दना-गान बज रहा है। ऊँची आवाज धीमी हो रही है, दिन की अब आखिरी साँसें चल रही हैं। अन्धकार शतच्छिद्र एकच्छन्न सत्ता को बुला रहा है। आधी रात में किवाड़े बन्द कर हम आराम से बिस्तरे पर लेटे हैं, स्तब्ध पृथिवी में केवल एकाकी उत्साही अक्लान्त एक ही सुर सुनाई पड़ रहा है, निगूढ़ मन्त्र का जैसे आखिरी श्लोक हो, मेढक का उच्चारित कोक कोक, कोक।"

मेढक के विषय में इतनी बड़ी कविता और उसे ईश्वरभक्त ऋषि बतलाना यह एक आधुनिक कवि का ही काम है।

हुमायुन कबीर

हुमायुन कबीर को बंगाल के बाहर लोग मुसलमानों के एक राष्ट्रीयतावादी नेता के रूप में जानते हैं, कोई नहीं जानता कि बँगला के एक बड़े कवि हैं। उन्होंने अपनी कुछ कविताओं का अंग्रेजी में अनुवाद कर विलायत में छपाया है, अच्छी अच्छी

पत्रिकाओं ने उनकी प्रतिभा का अभिनन्दन किया है। प्रकृति को वह सुन्दर देखते हैं, किन्तु जब प्रकृति और मनुष्य के स्वार्थ में संघर्ष होता है तो यह मनुष्यों का कवि प्रकृति को आड़े हाथ लेने में नहीं चूकते। बंगाल में गंगा की दो शाखा हो गई हैं एक भागीरथी, दूसरी पद्मा। पद्मा इस बात के लिये मशहूर है कि अक्सर अपना पथ बदलती है, और जो भी गाँव वगैरह उनके रास्ते में आगये उनकी खैरियत नहीं। इस प्रकार पद्मा प्रकृतिका एक अद्भुत रूप है कवि ने कई कवितायें इसी पर लिखी हैं। मालूम होता है कवि को यह विषय उसी तरह प्यारा है जैसे दर्द वाला दाँत जीभ को, इधर उधर गई और उस दाँत के पास पहुँच गई। हम इस कविता के कुछ उद्धरण ही दे सकते हैं—

> बहुदिन परे आजि रोगजीर्ण आँखि दुटि मेलि
> हेरिलाम तोरे।
> श्रावणेर घनघटा एइ पुंज मेघेर आड़ाले
> अपूर्व योगिनीवेशे मुक्तकेशे आसिया दाँड़ाले
> नयनेर आगे मोर। लुब्ध क्षुब्ध ऊर्मिराशि ठेलि
> चलेछे वहिया क्षुधु—आविल सलिलराशि तव
> नेचे ओठे मरणेर ताण्डव नर्तने नव-नव—
> चिरमुक्ता—धरा किनिनाको कोनो डोरे?
> शैशव जीवन हते तोरे आमि देखितेछि नदी
> पाइनाको शेष।

'बहुत दिनों बाद रोग-जीर्ण आँखों को खोलकर मैंने आज तुझे देखा। श्रावण की घनघटा इस मेघपुंज की आड़ में तू एक अपूर्व योगिनी के वेश में बाल खुली हुई हालत में मेरे सामने खड़ी हो गई। लुब्ध, क्षुब्ध लहरों को ढकेलती हुई तू बढ़ चलती

है। तेरा आविल जल मरण के नये-नये ताडव नर्तन में नाच-नाच उठता है। हे चिरमुक्ता, तू किसी भी डोरी में पकड़ाई नहीं देगी। मैं बचपन से तुझे देखते रहा हूँ फिर भी तेरा अन्त नहीं पाता।'

'कभी तो शरत के प्रातःकाल में तू पूर्णनदि, शान्त और अचंचल है, कलकल-कलकल तेरा पानी चलता जाता है, कभी वैशाख की सन्ध्या में यदि बादल आगये तो प्रलय-नर्तनछन्द में तुम्हारा प्राण नाच उठता है, तब तुम्हारे सलिल में ध्वंसलीला का गीत निकलता है, उस तुम्हारे नयनों में करुणा का लेश नहीं है।'

'बालरवि की किरणों में हे नदी मैंने तुम्हारी फिर दूसरी ही हँसी देखी है, पूर्णिमा के प्लावन में तुम्हारे किनारे पर काशकुसुम फूले हैं, अधीर पवन में मादक पुष्पों की गंध तैरती रहती है। तुम्हारी मुग्ध जलराशि फिर भी खेलती है। हृदय में धनधान्य लेकर तथा आँचल को वनपुष्पों से सजाकर सुहाग-लज्जा से एक किनारे से दूसरे किनारे तक मृदुवाणीपूर्ण होकर खेलती हुई जाती हो जैसे किसी को प्यार करती हुई दूर जा रही हो। + + + आज फिर मैंने तुम्हारा यह क्या नया रूप देखा, भैरवनिनि की तरह नदी हुई हो, आकाश में मेघों की घटा है। + + + + अकस्मात् तेरा स्रोत सूर्य की किरणों से छुरी की तरह चमक उठता है, यह मानो तेरे हिंस्र स्तन तथा होठों पर कुटिल हँसी है, तेरे निठुर नयनों में हत्या की साथ बाघ की हत्या करने की इच्छा की तरह इस शान्त स्तिमित आलोक में स्पष्ट हो जाती है। तू प्रबल है, दुर्वार है, अत्याचारी है, श्यामशोभावाले देश को तोड़फोड़कर पृथिवी में अपना रास्ता पथ बनाती रहती है। तू किसी की नहीं सुनती, फिर भी नर क्या करे रोता है किन्तु एक दूसरे को सीने से लगाकर जीता है। बाहर विशाल विश्व अपने कठोर जाल को बिछाता रहता है फिर भी मनुष्य बैठा रहता है सब सुख तथा दुःखों में आँखें उ

किये हुए।'

ऊपर जो कविता दी गई वह पुरानी है, 'पद्मा पर उनकी बिल्कुल अभी की लिखी हुई एक कविता दी जाती है।

> दूरदेशे तोरे बहुदिन छिनु भुले
> पद्मा मोर।
> आबार शाडने तोर कूले-कूले भाडन लेगेछे जोर?
> नेमेछे वर्षा घोर।
> घरेर चिह्न धुये मुछे दिये
> विपुल सलिल सभार निये
> यौवन तोर वोये निये जास काहार दोर?
> के मनोचोर?
> पद्मा मोर।

'मेरी पद्मा दूर देश में तुझे बहुत दिनों तक भूला रहा था। फिर श्रावण आने में तेरे किनारे सब टूट रहे हैं, घोर वर्षा उतर आई। सूली का चिह्न धो पोछकर, विपुल सलिल सभार लेकर तेरे यौवन को बहाकर किसके दर पर ले जा रही है? किसने तेरा मन चुराया, मेरी पद्मा।'

प्रकृति और मानव का संघर्ष इस कविता में अधिक स्पष्ट है—

> मनुन मायाय भरेछे दुकूल तबो
> पद्मा मोर।
> जलेर किनारे एसेछे दुखी नर
> तोनु दया नाहीं तोर?
> अतिथि शिशुरे हासिस कि करि?
> निठुर प्रहारे उठिछे शिहरी

ठिकरि पडिछे क्षुरधार स्रोत निरन्तर
देखिते कोमल तबु एतो तोर
हिया कठोर ?

'हरी माया से तेरे दोनों किनारे भरे हैं मेरी पद्मा। पानी के किनारे नई दूर्वा आई है फिर भी तुझे दया नहीं है ? अतिथि और फिर बच्चे को इस प्रकार कहीं दुतकारा जाता है। तेरे निठुर प्रहारों से यह हर घडी सिहर उठती है, तेरे क्षुरधार स्रोत माना निरन्तर धड़क रहे हैं, देखने में तू इतना कोमल है फिर भी तेरा हृदय इतना कठोर है मेरी पद्मा ?'

कवि फिर पद्मासे पूछता है तेरे जीवन का दर्शनशास्त्र भला क्या है, दुख के दहन में तू बारबार मनुष्य का नरमी असली देखना चाहती है। जीवन की धारा मन्थर हो जाती है, सत्य दिन रोज के अभ्यास से याने रोज प्रयोग में आने के कारण लुप्त हो जाता है, वहीं तेरी लीला ध्वंस के उल्लास में है। मेरी पद्मा ध्वंस के साथ ही सृष्टि का तानाबाना है। तेरे किनारे के लोग हमेशा घर (*nomad*) ही रह गये, जो दिन के लिये किनारे पर घर बाँधते हैं फिर दो दिन बाद कहाँ चले जाते हैं ?

पद्मा कविता में कवि ने नदी को चलस्वरूप मनुष्य विरुद्ध प्रकृति को ही दिखलाया है। प्रकृति और मनुष्य का जो संघर्ष सृष्टि की आदि से चला आया है उसीकी एक झलक इस कविता में है, वही प्रकृति एक समय कितनी सुन्दर और दूसरे समय कितनी निष्ठुर है यह इस कविता में दिखलाया गया है, किन्तु साथ ही मनुष्य किस प्रकार जिद्दी है, प्रकृति ने जरा ढील दी आगे बढा, जरा तीव्र हो गई पीछे हट गया, यह बात पद्मा किनारे मनुष्य के *romadic* होने से दिखलाया गया है।

आशु चट्टोपाध्याय

आशु चट्टोपाध्याय की 'यौवन धर्मी' नामक कविता कविता

किये हुए।'

ऊपर जो कविता दी गई वह पुरानी है, 'पद्मा पर उनकी बिल्कुल अभी की लिखी हुई एक कविता दी जाती है।

> दूरदेशे तोरे बहुदिन छिनु भुले
> पद्मा मोर।
> आबार शाडने तोर कूले-कूले भाडन लेगेछे जोर ?
> नेमेछे वर्षा घोर।
> चरेर चिह्न धुये मुछे दिये
> विपुल सलिल संभार निये
> यौवन तोर बोये निये जास काहार दोर ?
> के मनोचोर ?
> पद्मा मोर।

'मेरी पद्मा दूर देश में तुझे बहुत दिनों तक भूलाकर था। फिर श्रावण आने में तेरे किनारे सब टूट रहे हैं, घोर वर्षा उतर आई। चरों का चिह्न धो-पोंछकर, विपुल सलिल संभार लेकर तेरे यौवन को बहाकर किसके दर पर ले जा रही है ? किसने तेरा मन चुराया, मेरी पद्मा।'

प्रकृति और मानव का संघर्ष इस कविता में अधिक स्पष्ट है—

> मधुर मायाय भरेछे दुकूल तरो
> पद्मा मोर।
> जलेर किनारे एसेछि दुवा नर
> तोतु दया नाही तोर ?
> अतिथि शिशुरे हासिस कि करि ?
> निठुर प्रहारे उठिछे शिहरी

ठिकरि पड़िछे छुरधार स्रोत निरन्तर
देखिते कोमल तनु एतो तोर
हिया कठोर ?

'हरी माया से तेरे दोनों किनारे भरे हैं मेरी पद्मा। पानी के किनारे नई दूर्वा आई है फिर भी तुझे दया नहीं है ? अतिथि और फिर बच्चे को इस प्रकार कहीं दुतकारा जाता है। तेरे निठुर प्रहारों मे यह हर घड़ी सिहर उठती है, तेरे छुरधार स्रोत मानों निरन्तर चटक रहे हैं, देखने में तू इतना कोमल है फिर भी तेरा हृदय इतना कठोर है मेरी पद्मा ?'

कवि फिर पद्मासे पूछता है तेरे जीवन का दर्शनशास्त्र भला क्या है, दु:ख के दहन में तू बारबार मनुष्य का नकली असली देखना चाहती है। जीवन की धारा मन्थर हो आती है, नत्य दिन रोज के अभ्यास से याने रोज प्रयोग में आने के कारण लुप्त हो जाता है, यहीं तेरी लीला ध्वंस के उल्लास में है। मेरी पद्मा ध्वंस के साथ ही सृष्टि का तानाबाना है। तेरे किनारे के लोग हमेशा बद्दू (*nomad*) ही रह गये, दो दिन के लिये किनारे पर घर बाँधते हैं फिर दो दिन बाद कहाँ चले जाते हैं ?

पद्मा कविता में कवि ने नदी को उपलक्ष्यकर मनुष्य विरुद्ध प्रकृति को ही दिखलाया है। प्रकृति और मनुष्य का जो संघर्ष सृष्टि की आदि से चला आया है उसीकी एक झलक इस कविता में है, यहीं प्रकृति एक समय कितनी सुन्दर और दूसरे समय कितनी निष्ठुर है यह इस कविता में दिखलाया गया है, किन्तु साथ ही मनुष्य किस प्रकार जिद्दी है, प्रकृति ने जरा ढील दी आगे बढ़ा, जरा तीव्र हो गई पीछे हट गया, यह बात पद्मा किनारे मनुष्य के *romadic* होने से दिखलाया गया है।

आशु चट्टोपाध्याय

आशु चट्टोपाध्याय की 'यौवन धर्म' नामक कविता कविता

रूप में कुछ विशेष सफल न होने पर भी हम इस युग के कवि
की मनोवृत्ति का पता पाते हैं। वे कहते हैं—

आमरा यौवन धर्मी गई विशो शतकेर तरुण तापस
बाँचार साधना कोरि—ठीकमतो बाँचा जाके बल—
रुटिनेर दास नई, बाधा पथे कोभु पथ चलिबोना,
प्रथा के मानि ना मोरा, यदि सेई प्रथार पाँचिले,
मान्धातार आमलेर से प्रथार कठिन पाथरे
माथा खुँडे मरे आत्मा असहाय, असह्य क्षुधाय

'हम यौवन धर्मी हैं, हम इस बीसवीं सदी के तरुण तपस्वी
जीने की साधना करते हैं याने ठीक तरह से जीना जिसे कहते हैं
हम रूटीन के दास नहीं हैं, लकीर के फकीर हम कभी नहीं
सकते। प्रथा को हम कभी नहीं मानते, चाहे प्रथारूपी दीवार
मान्धाता के जमाने के कठिन पत्थर में असहाय आत्मा चाहे अस
भूख में सिर दे मारे।'

'हम यौवन धर्मी हैं, कौन कहता है कि हम अपने ही हाथ
बनाये हुए कुछ लोहे के यन्त्रों के गुलाम हैं? हम यन्त्र के प्रभु।
हम समूची पृथिवी के मालिक हैं। अपनी ही इच्छा से हम स
कुछ तोड़ते तथा बनाते हैं। जीवन के सभी रास्तों में हमा
अश्रान्त यात्रा है, जाडा, गर्मी, वर्षा में हम मैदान के अट्टहास हैं।

'हमें खाने को नहीं मिलता। हँसी आती है। हममें से कित
नहीं पाते। हम ईश्वर के समकक्ष हैं, हम भाग्य के नियामक हैं
हमने उत्सुक तगड़े हाथों में इस जीवन की पतवार पकड़ रक्खी है
हमें मालूम है हम कहाँ जा रहे हैं। हर समय हमारे पाल के लि
हवा रहती है, यदि कभी अन्यथा हो तो जानिये कि यह क्षणि
निलाम है। हम अपने भाग्य को लेकर बीच-बीच में खेलते हैं।'

यदि मेरी कोई रात नारी के केश के गुच्छों में मदिर मोह

स्वप्न में देखो तो फिर दिन में काम के आँगन में मुझे वर्षान्त हँसी की आड में पाओगे। यदि किसी दिन मुझे शाल वृक्ष का सिर छूट, वायु से हिलते देखो और मुझे नक्षत्र की टिमटिमाती धीमी रोशनी में चुप बैठे देखो, तो मुझे बुलाना मत, मैं उस समय विधाता से बात करता हूँ।'

यह देखने की बात है कि इस कविता में देश की पराधीनता का कोई चित्र नहीं है, यद्यपि यौवन धर्म आज यदि कोई है तो उसका सबसे पहिला कर्तव्य इसी ग्लानि के विरुद्ध संग्राम करना है। अति आधुनिक कविता यहाँ पर अति आधुनिक नहीं हो पाती, क्या इसकी वजह डर है? कवि लोगों को इस पर सोचना चाहिये।

महीउद्दीन

कवि महीउद्दीन आधुनिक की सबसे बड़ी विशेषता को 'बुभुक्षा' करके व्याख्या करते हैं। उनकी आँखों में रूप-तृष्टि-तृष्णा है और हृदय में तृप्तिहीन अनन्त बुभुक्षा है। उनकी समस्त इन्द्रियाँ रोकर दिन-रात कहती हैं कि व भूखी हैं, भूखी। वे कहते हैं—

जडेर जडता त्यजि नीड आमि जन्म करे लभिलाम भवे
अनन्त सुप्तिर मामे भूमानन्दे ज्योतिर्मेर आलोक आहवे
इत्यादि

'जड की जड़ता त्यागकर मैं नीड इस दुनिया में पैदा हुआ। मैंने यहाँ मैं जड हूँ, जग गया हूँ, सीमाहीन शून्य को त्यागकर प्रतिध्वनि हुई जगा हूँ, जगा हूँ। निर्विकार निद्रा जान में मैं न मालूम कब हुआ मुसाफिर पथ में थककर सो रहा था और मैं अपनी उन्मत्त गति का नृत्यताल भूल गया था। — — मैंने इस विश्व की सागर में बुभुक्षा भाव में यामना का भिखारी हूँ, गेरानी चाहता हूँ।" छाया चाहता हूँ, आनन्द से पुनश्चित महाप्राण चाहता हूँ।'

'जंगल काटकर मैंने सोने की नगरी बसाई। हिमालय की चोटी की ओर यात्रा की है, अगाध जलधि के नीर से मोती

निकाला है। धन और रत्न से विपुल भंडार भर लिया है। अपने ही परिश्रम से मैंने इस विशाल भोग के संसार की सृष्टि की है। ++सूर्य, चन्द्र, ग्रह नक्षत्रों के रहस्य की मैंने ही खोज की है, पाताल में राज्य फैलाया, काव्य, दर्शन, इतिहास, विज्ञान की सृष्टि की। मैंने वंचित मानव के लिये साम्य, मैत्री, स्वाधीनता के गीत गाये हैं। मैंने भूख से व्याकुल निपीडित मानव के भूखे जठर में रोये हैं, मैंने निर्यातन निर्वासित के लिये फाँसी का फन्दा गले में डालकर गाये हैं।' इत्यादि

अरुणकुमार मित्र

तरुण कवि अरुणकुमार ने 'लाल पर्चा' शीर्षक एक कविता लिखी है—

> प्राचीर पत्रे पडोनि इस्ताहार
> लाल अक्षरे आगुनेर हलकाय
> झलसाने काल जानो ?

इत्यादि

'क्यों जी तुमने दीवार पर चिपका हुआ लाल-पर्चा नहीं पढ़ा, उसके लाल हरफ आग की तरह रंग लायेंगे। (आकाश में विरोध का उत्ताप घनीभूत होता है, पुरानी नाता की धार भुथरी हो गई है) युगान्त उत्कर्ण है, पढ़ो जी, जरा लाल पर्चे को तो पढ़ो।'

'भीड़ में भिड़कर खोनो तो नहीं फौन तैयार है, हथियार से लैस। कड़ी मुट्ठियों में जबर्दस्ती स्वर्ग छीन लेना है, क्या देखना भी हमें रोक सकते हैं।'

यह कविता बहुत लम्बी है, इसको हम यहीं समाप्त करते हैं।

फुटकर कवियों की कविता

आगे हम कवि को विशेष महत्त्व न देकर यह दिखायेंगे कैसे

कैसे विषय पर ताजी से ताजी बँगला कवितायें लिखी जा रही हैं।

अमूल्य चट्टोपाध्याय नामक एक कवि किस प्रकार की उपमा का व्यवहार कर रहे हैं। देखिये, शायद बँगला के पुराने कवि जब अमूल्य बाबू मरकर वहाँ जायँ तो उनके साथ रहने को इनकार करें।

> मध्यरात्रे मिडल रोडे नैशब्द्य झुलछे
> गरुर मासेर मतो।
> निःशब्द, निःशब्द रात्रि घन मेघे।

पहिले तो बड़ी देर तक कविता मेरी समझ में नहीं आई, फिर मैंने सोचा इसका अंग्रेजी में अनुवाद करूँ तो समझ में शायद आवे क्योंकि मैं जानता था आजकल के बहुत से कवि अंग्रेजी में सोचते हैं। अंग्रेजी में अनुवाद करते ही कविता मेरी समझ में आई। वह अनुवाद यों था—

> *At the dead of night silence bangs in middle road*
> *Like a piece of beef*
> *Silent, silent is the night with thick clouds*

अंग्रेजी में इसलिये समझ में आया कि *silence bangs* में *bang* शब्द हम समझ जाते हैं, किन्तु निःशब्दता झूल रही है यह उतना समझ में नहीं आता। यहाँ गोमांस के साथ तुलना देकर कवि ने रात्रि की निस्तब्धता की वीभत्सता दिखलाई, इसलिये इस कविता की वाक्यरचनाशैली अंग्रेजी की (*Anglicised*) होते हुए भी इसकी आत्मा भारतीय है क्योंकि गोमांस का बड़ा टुकड़ा एक अंग्रेज की आँखों में वीभत्स नहीं, बल्कि उसकी जीभ से शायद लार ही टपक पड़े।

मंगय भट्टाचार्य 'उद्धृत' नामक कविता में धर्म को भी पूँजीपतियों का साथी बतलाते हैं।

> तोमादेर तलोयार

झलमल करियाछे पृथिवीर रोदे,
झलमल करियाछे
तोमादेर मिनारेर चूडा।
ताहार अनेक घाम
अनेक चोखेर जल
बहु रक्त
शुकायेछे पृथिवीर रोदे,
तोमादेर इतिहासे
कोनो स्मृति आमे नाइ तार
शुधु भेसे गछे बार बार
मिनारेर चूडा आर
झलमल बाँका तलोयार।

"तुम्हारी तलवारों में तथा तुम्हारे मन्दिरों की चूड़ाओं में पृथिवी की धूप से चार चाँद लगे हैं, किन्तु उनका पसीना, आँसू तथा खून को इस पृथिवी की धूप ने सुखाये ही हैं। तुम्हारे इतिहासों में इनमें इन बातों का कुछ पता नहीं है, केवल बार बार तुम्हारे मीनारों की चूडा और चमकती हुई बाँकी तलवारों का ही बार-बार उनमें आना-जाना हुआ है। स्वर्ग में जो देवता आये वे भी बड़े कीमती थे, वे यदि कभी कृपाकर इस पृथिवी पर तशरीफ लाते हैं तो तुम लोगों की स्वार्थसिद्धि के लिये। उनकी भूख की तड़प, अपमृत्यु, तथा मिट्टी की देह देवताओं के मन्त्र से और म्लान हो जाती है, तुम्हारे मन्दिरों का डेवढी में उनका कोई चिह्न तक नहीं है, उनके लिये तो तुम्हारे देवता केवल मिट्टी भर हैं।"

आधुनिक मन की प्रतिक्रिया *escapism back to the Jungle* या *rebarbario isress* में हुआ है।

सन्तोषकुमार घोष कहते हैं—

तार चेये चलो येनो खर्जुरकुंजे
जे था ओड़े शुधु सादा बालि धू धू प्रान्ते
सार्थवाहीरा उष्ट्रेर पिठे चलेछे
पाये आँका पथ दूर दिगन्ते पालालो ?

'चलो इससे कहीं खजूरों के कुंज में चलें, जहाँ केवल सफेद बालू वीरानों में उड़ता है, कारवाँ चले जा रहे हैं, पदचिह्न से अंकित पथ जहाँ निरन्तर क्षितिज में मिल जाता है।'

डँकि देवेनाको से खाने कागजो दैनिक
युद्धे कलाख चीना सैनिक मरेछे
साहाइ एते साघातिक की घटलो
मालती, से सब जेने आमादेर लाभ कि ?

"वहाँ पर दैनिक अखबार झाँक भी नहीं सकते। वहाँ यह नहीं सुनना पड़ेगा कि कितने लाख चीनी सैनिक मरे हैं, साघाई में साघातिक क्या-क्या घटना हो रही है मालती, यह सब जानकर मुझे फायदा क्या है ?"

शहरेर पथे कोथाय मिछिल चलेछे
धर्मघटिरा कोथाय गुलि खेये मरलो
ना हय हलोई आश्रयहीन इहूदी
आमादेर नीड़ थाकलेइ हलो अटूट

'शहर में कहाँ मजदूरों का जुलूस निकला, कहाँ हड़तालियों पर गोली चली इनसे मेरा क्या वास्ता ? सारी दुनिया के यहूदी चाहे आश्रयहीन हो जायँ, हमारा खोता बना रहे तो बस।'

'वहाँ पथ चलते चलते उन्मन बेकार युवक धनियों की मोटरों

झलमल करियाछे पृथिवीर रोदे
झलमल करियाछे
तोमादेर मिनारेर चूड़ा।
तादेर अनेक घाम
अनेक चोखेर जल
बहु रक्त
शुकायेछे पृथिवीर रोदे,
तोमादेर इतिहासे
कोनो स्मृति आसे नाइ तार
शुधु भेसे गछे बार बार
मिनारेर चूड़ा आर
झलमल सोना तलोयार।

"तुम्हारी तलवारों में तथा तुम्हारे मन्दिरों की चूड़ाओं में पृथिवी की धूप से चार चाँद लगे हैं, किन्तु उनका पसीना, आँसू तथा खून को इस पृथिवी की धूप ने सुखाये ही हैं। तुम्हारे इतिहासों में इनके इन बातों का कुछ पता नहीं है, केवल बार बार तुम्हारे मीनारों की चूड़ा और चमकती हुई सोने की तलवारों का ही बार-बार उनमें आना-जाना हुआ है। स्वर्ग में जो देवता आये वे भी बड़े कीमती थे, वे यदि कभी कृपाकर इस पृथिवी पर तशरीफ लाते हैं तो तुम लोगों की स्वार्थसिद्धि के लिये। उनकी भूख की तड़प, अप मृत्यु, तथा मिट्टी की देह देवताओं के मन्त्र से और म्लान हो जाती है, तुम्हारे मन्दिरों का टेकड़ी में उनका कोई चिह्न तक नहीं है, उनके लिये तो तुम्हारे देवता केवल मिट्टी भर हैं।"

आधुनिक मन की प्रतिक्रिया *escapism back to the Jungle* या *rebarbarousness* में हुआ है।

के नीचे छुट्टी नहीं पाते, फिर हे मालती कारखानों की चिमनी के धुएँ से तुम्हारी चाँदनी मैली नहीं होगी।'

'धनियों और धनियों की लोभाग्नि, अन्याय तथा बारूद से हवा भर गई है, उधर जापान - है, न मालूम कब क्या गुल खिलाये। चलो इससे खजूरों के कुंज में चलो, जापान की साधु चेष्टा सार्थक होने दो। हम एक दूसरे को लेकर सुखी होंगे, भागे हुए के प्राण में बारूद भला क्या असर करेगा।'

सच बात कही जाय तो यह प्रतिक्रिया है। आधुनिक के जीवन में जो सैकड़ों समस्यायें हैं उनसे घबड़ाकर पलायनवाद (*escapism*) का आश्रय लेना या बीते हुए स्वर्णयुग को लौटा लाने का स्वप्न देखना (*revivalism*) कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अन्याय है किन्तु वह जबरदस्त है, उससे लड़ना मुश्किल है, लड़ने पर खतरे हैं, जेल काला पानी, फाँसी। ऐसी हालत में इन काल्पनिक तथा बेसरपैर मतवादों के बालू में शुतुरमुर्ग की तरह मुँह छिपाकर बैठना आश्चर्यजनक नहीं। आज मध्यम श्रेणी अन्दर में अच्छे बुद्धिमान् व्यक्ति इस प्रकार की अकर्मण्यता में अपना जीवन खो रहे हैं। इसीको कहते हैं *La Grande Trahisson* यानि विराट विश्वासघात, पढ़ेलिखे लोग सब कुछ समझकर भी खतरे के कारण काम से जी चुराते हैं यही विराट विश्वासघात का स्वरूप है।

सुभाषचन्द्र मुखोपाध्याय की एक कविता और देखिये। इसमें ५ मजदूर के फटे हाल का वर्णन है। कैसे वह एक तरफ किसान तथा दूसरी ओर पूँजीवाद की चक्की के दो पाट के बीच पिसकर खतम होते जा रहे हैं उसको दिखलाया है।

कविता का नाम है 'अत पर'। इस कविता में छन्द का कहीं पता नहीं, हाँ, सीढ़ी की तरह लिखी गई है। कविता यों है

"सम्पादक को मिले

महाशय—इधर-उधर मेरी कुछ जमींदारी है, लेकिन इस दुःसमय में उसे बचाना कठिन है। मगरमच्छ के अनुरूप निश्चिन्त-निमूढ होकर जैसा ईश्वर चलाते हैं वैसा ही चलता हूँ। इन्सान तानेदार है, लगान वसूल करने की मद दस्तीरें ... हैं, फिर भी तीन साल से लगान वसूल कम हुआ। अन्तस्तल में ज्यादा कुछ होता नहीं। थोड़ा आय है सो भी केस के फसाद में है। पता नहीं अन्त में भीख माँगना पड़ता है या ...। कैसा अन्दर में दिया माँगते हैं, रोनले मे उनका प्रेम है, ... । निर्जन पर ही नहीं, कुछ सचरित्र किन्तु बुद्धिहीन नौजवान निरन्तर किसानों को लेक्चर से मुग्ध करते हैं, उधर हम लोगों को खाने को सूत नहीं। क्या ये ही साम्यवादी हैं ? फिर भी भारत अन्त का चक्का घूम जाय। अंग्रेज प्रभुओं का भार तुला है, ... राज्यभार आयेगा, कोई तानुन नहीं। पूँजीपतियों का पौनारह है। विशेषकर भारतवर्ष के इकलौता नेता हैं गान्धी, जितना रुपया लगना है सब पूँजीपति ला हैं। क्यों न ..., सोचते हैं इसका भविष्य नतीजा अच्छा होगा। सरकार जमींदारी जाय तो जाय। चरित्र की मौलिक प्रतिभा ... मुक्ति पायेगी। इस विषय में पत्रपाठ मौन रहता हूँ।

निवेदक रामचन्द्र पात्र ढाका"

मुझे डर है बहुत से लोग इस कविता मनन का तैयार न होंगे, किन्तु जो कुछ भी हो यह भी एक बात है।

रूस वर्तमान समय में एक बहुत ही बड़ा बातचीत का विषय है, रूस बहुतों के लिये एक b ... सा है, इसी पर अमृतनाथ गोस्वामी ने एक कविता लिखी है—

लाल जुजु एलो ए दुनियार
दुनियार मोहमुद्गर ये चार्विक भावना
चोख धान बुने सब ...

हुशियार

इत्यादि

"वह देखो लाल भूत (*bogey*) आ रहा है, हुशि
दुनिया के बच्चो चिल्लाओ मत, लॉर्ड-कान वन्द कर सु
सो रहो, हुशियार। हिटलर, मुसोलिनी, जापानी नौगुचि सब
हैं हुशियार। अंग्रेज, फ्रांसीसी सावधान होकर घूरते हैं,
को धन्डन का भोला लेकर वह आया लाल भूत। हुशियार,
सो जाओ, देर न करो, देखो वह विपत्तिसूचक लाल
हुशियार। सफेद, काले, पीले सब बच्चे पडकर सो रहो।
भगाना है, इसामसी भी आय हो गये, स्वस्तिस्थ नाथारी श
सेना पुकार रही है वह आया लाल भूत हुशियार।"

इस प्रकार अब आधुनिक कविता केवल नारी की पूजा म
देवताओं की प्रशंसा में सीमाबद्ध न रहकर मनुष्य के सभी
सभी दिलचस्पियों में अपने लिये रास्ता बना रही है। शायद
कारण आलंकारिकों की दृष्टि में अब वह उतनी हद तक कविता
रही, किन्तु अब वह जीवन के हरेक रन्ध्र में अपनी जड को प्र
करा कर अपने को सजीव बनाना चाहती है, साथ ही उ
की मिट्टी को वह अधिक सामञ्जस्यपूर्ण तथा उससे
दूसरे में सम्बन्धयुक्त बनाना चाहती है। यही इस
की कविता का विशेषता है। हाँ कहीं कहीं इसमें अति हो
है यह मानता हूँ किन्तु कोई भी बाढ जब आती है तो सब वह
है, जब बाढ का पानी चला जाता है तो वह एक मिट्टी छोड
है, उसीमें सोना फलता है। अभी बँगला के काव्यक्षेत्र में बा
बाढ आ रही है हम उस महान प्रतीभा की प्रतिक्षा में हैं जो
को हटाकर इसमें सोना पैदा कर सकें।

इति